आचार्य कुन्दकुन्ददेव विरचित

**समयसार**

ज्ञायकभाव प्रकाशक टीका

फूलचंद

**यूनिवर्सल समयसार @100K**

चैतन्य तत्त्व की पुकार करने वाली वाणी वीतराग वाणी आत्मार्थी साधकों की कामधेनु है, कल्पवुक्ष है। आज से करीब 2000 वर्ष पहले कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव विचारित ग्रंथाजिराज समयसार समस्त परमागमों का सार है। पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी आदि अनेक सम्यग्दृष्टी ज्ञानी धर्मात्माओं ने अपनी आध्यात्मिक   
यात्रा के दौरान चैतन्य दिशा के निर्देशक परम साथी समयसार को अहो! अहो! उपकार माना है।

अशरीरी होने का शास्त्र समयसार, पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी को सन् 1921 में   
गुजरात के दामनगर में दामोदर सेठ के द्वारा प्राप्त हुआ था। इसके 100 वर्ष की पूर्णाहूति के उपलक्ष्य में सन् 2021 में यूनिवर्सल समयसार @100 K (US@100K) संस्थापन का भाव उदित हुआ। इसका प्रयोजन वही था कि विश्वव्यापी समयसार की सम्पूर्ण विश्व में एक लाख   
केन्द्रों पर ई−मेल के माध्यम से मंगलमय स्थापना हों। साथ ही ज्ञान दीपकों के निवासस्थानों   
पर 142 प्रत्यक्ष स्थापना एवं 158 देशों में विविध राष्ट्रीय पुस्तकालय, विश्वविद्यालय, आदि   
अध्ययन केन्द्रों पर 415 परोक्ष स्थापना के माध्यम से ग्रंथाधिराज समयसार जब−जब तक पहुँचें   
एवं पंचमकाल के अंत तक सुरक्षित रहकर आत्मार्थी आराधकों की आराधना का आधार बनें।

पूज्य गरुदेव एवं परम कृपालुदेव के मंगल आशीर्वाद से सफल संपन्न श्री आत्मसिद्धि   
शास्त्र मिशन समापन के ठीक चार वर्ष पश्चात् 4 नवम्बर, 2021 के शुभदिन शाम 4:15 पर उमराला में (US@100K) संस्थापन का मंगलमय मंगलाचरण हुआ। तभी ऐसा विकल्प आया कि वैशाख शुक्ल दूज, 2 मई 2022 के शुभदिन पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के 132 वें जन्मोत्सव पर परिपूर्ण चैतन्य समयसार को दृष्टि में रखकर (US@100K) संस्थापन की सफल पूर्णाहूति हों। समयसार के सफल स्वाध्याय से साधक की श्रद्धा में चैतन्य समयसार की स्थापना हों एवं प्रत्येक साधक प्रत्यक्ष समाधिप्रज्ञ समयसार हों, ऐसी भवनाशिनी भावना भाता हूँ।

**– फूलचंद**

**आचार्य कुन्दकुन्ददेव विरचित**

**समयसार**

**ज्ञायकभाव प्रकाशक टीका**

**फूलचंद**

**प्रकाशक**

**आध्यात्मिक साधना केन्द्र**

**उमराला**

**प्रथम आवृति :** 14/2/2022

प्राप्ति स्थान :

**आध्यात्मिक साधना केन्द्र**

उमराला – 364 330, जि. भावनगर (गुजरात)

संपर्क : श्री किशोरभाई जैन +91−2843−235202/03

श्री धर्मेन्द्रभाई जैन +91−9898245201

WhatsApp : +91−9624446142

YouTube : Fulchand Shastri ~ ASK Umarala

Email : ask@fulchandshastri.com

Website : *www.fulchandshastri.com*

**मुद्रक :**

**मल्टी ग्राफ़िक्स**

18, वर्धमान बिल्डिंग, तीसरा माला,

खोताची वाड़ी, वी. पी, रोड, मुंबई – 400 004.

Ph,: (022) 2388 4222 Mob.: 8080806736

E−mail : supoort@multigraphics.com

Website : *www.multigraphics.com*

**प्रस्तावना**

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव विचरित ग्रंथाधिराज समयसार परमागम सम्राट के रूप में जाना जाता है। समयसार का प्रतिपाद्य विषय चैतन्य   
तत्त्व है। समस्त तीर्थंकर परमात्माओं के दिव्यध्वनि का केन्द्रबिन्दु एवं सारे जगत में सार चैतन्य तत्त्व है।

जैसे छाछ को मथने पर उसमें सारभूत मक्खन ऊपर आ जाता है, ऐसे ही अपूर्व पुरुषार्थ से आत्मानुभूति प्रकट होने पर सारे जगत में सारभूत चैतन्य तत्त्व सारे जगत से न्यारा अनुभव में आता है। अतः वह परम सत्य है कि सारे जगत में चैतन्य तत्त्व से अधिक महान और कुछ भी नहीं है। समयसार में शुद्ध चैतन्य स्वरूप का विवेचन किया होने से वह ग्रंथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आत्मानुभूति में ज्ञानियों को अनुभव में आने वाले शुद्ध चैतन्य स्वरूप का सर्वांग विवेचन   
इस परमागम में किया गया है।

राग एवं द्वेष के भाव आत्मा में उत्पन्न होने पर भी आत्मा उन भावों से न्यारा है। जैसे बहती नदी के दोनों किनारों पर दो गाँव बसे हों एवं गाँव के लोग बहते पानी में कहीं नहीं मिलते हैं, ऐसे ही राग एवं द्वेष भाव ज्ञान के बहते   
प्रवाह में कहीं मिलते नहीं हैं। चैतन्य रस से परिपूर्ण आत्मा ही समयसार का   
सार है। जैसे समुद्र किनारे पर बहती हुई ताज़ी हवा को पेटी में भरकर दूर नहीं ले   
जा सकते, ऐसे ही आत्मानुभूति वाणी द्वारा व्यक्त नहीं हो सकती। फिर भी ज्ञानी को आत्मानुभूति को वाणी द्वारा व्यक्त करने के भाव आते हैं। ज्ञानी जानते एवं मानते हैं कि इन भावों का भी निज चैतन्य तत्त्व के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

आज से करीब 2000 वर्ष पहलेआचार्य कुन्दकुन्ददेव ने मूल प्राकृत   
भाषा में इस समयसार की रचना की थी। तत्पश्चातू आज से करीब   
1000 वर्स पहले आचार्य अमृतचंद्रदेव ने संस्कृत भाषा में गद्य एवं पद्य शैली

में आत्मख्याति नामक टीका की रचना की। तत्पश्चात् आचार्य जयसेनदेव  
ने संस्कृत भाषा में तात्पर्यवृत्ति नामक टीका की रचना की। इसी समयसार   
ग्रंथाधिराज से पण्डित बनारसीदासजी, समयसार सहित 1500 शास्तों का सार आत्मसिद्धि शास्त्र के रचयिता परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी एवं समयसार परमागम पर 46 वर्षों तक सभा में 19 बार आद्योपांत प्रवचन देने वाले पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के जीवन परिवर्तन में यह ग्रंथ प्रमुख निमित्त था।   
उनके करकमलों में यह पावन ग्रंथ आते ही उद्‌गार निकले कि समयसार   
तो अशरीरी होने का शास्त्र है।

धर्म के कोई सीमा नहीं होती। धर्म का पालन हेतु कोई बंधन नहीं   
होता। जब आत्मा में अम्रयादित शक्तियाँ हैं, तो आत्मा के धर्म में जाति एवं   
गति की मर्यादा कैसे हो सकती है? हमें याद रखना चाहिए कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान को हाथी के भव में एवं चौबीसवें तीर्थंकर महावीर भगवान को सिंह के भव में सम्यग्दर्शन रूपी अपूर्व धर्म प्रकट हुआ था। केवल तिर्यंच   
एवं मनुष्य गतियों में ही नहीं, तीर्थंकर भगवान की वाणी का सार समझकर आत्मा के अंतर्मुखी पुरुषार्थ से देव एवं नारकी को भी सम्यग्दर्शन हो सकता है।

ज्ञायकभाव प्रकाशक संक्षिप्त टीका में समयसार की 415 गाथाओं के रहस्यमयी गहन भावों को प्रत्येक गाथार्थ के पश्चात् अत्यंत सरल, सुबोध एवं रोचक उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करके समझाया गया है, जिससे आज की युवापीढ़ी सहित बालजीवों के लिए यह शास्त्र समझना आसान हो सके।

सभी पाठक इस ग्रंथाधिराज समयसार को पढ़कर विचार करके   
चैतन्य तत्त्व के ध्यान में लीन हों एवं परम आनन्द का उपभोग करें, ऐसी मंगल भावना भाता हूँ। इस शास्त्र के प्रकाशन हेतु जिन−जिन महानुभावों का योगदान रहा है, उन सभी महानुभावों को धन्यवाद देते हुए मेरे हृदय के अंतःकरण से प्रणाम करता हूँ।

चैतन्य चैतन्य चैतन्य…

**–फूलचंद**

**अनुक्रमणिका**

|  |  |  |
| --- | --- | --- |
|  | **अधिकार** | **गाथा** |
| 1. | पूर्वरंग अधिकार | 1−24 |
| 2. | जीवाजीव अधिकार | 25−37 |
| 3. | कर्ताकर्म अधिकार | 38−73 |
| 4. | पुण्य−पाप अधिकार | 74−82 |
| 5. | आस्रव अधिकार | 83−89 |
| 6. | संवर अधिकार | 90−94 |
| 7. | निर्जरा अधिकार | 95−114 |
| 8. | बंध अधिकार | 115−135 |
| 9. | मोक्ष अधिकार | 136−143 |
| 10. | सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार | 144−185 |

**पूर्वरंग अधिकार**

⁕ **गाथा १** ⁕

**वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।**

**वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं॥ १॥**

***परमागम रचयिता आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि :   
मैं ध्रुव, अचल और अनुपम गति को प्राप्त हुए सभी सिद्धों को   
नमस्कार कर श्रुतकेवलियों द्वारा कहे गए इस समयसार नामक   
प्राभृत को कहूँगा।***

जैसे किसी महल में टेन दीवारें और एक प्रवेश द्वार हो और कोई   
अंधा व्यक्ति दीवारों के सहारे चलता हुआ प्रवेशद्वार को खोजता हो, वह   
तीन दिशाओं में दीवारें होने से वहाँ से प्रवेश नहीं कर पाता है। उसे खुजली   
की बीमारी होने से खुजलाहट होने पर खुजाता है और प्रवेशद्वार छूट जाता   
है। उसे फिर से सभी दीवारों के चक्कर काटने पड़ते हैं। **ऐसे ही मोक्षमहल   
में तीन दीवारें और एक प्रवेश द्वार है। अज्ञानी जीव देव गति, तिर्यंच   
गति और नरक गति से मोक्षमहल में प्रवेश करने के लिए प्रयास   
करने पर भी संसार के इन तीन गतियों से प्रवेश नहीं कर सकता   
है। वह सिर्फ मनुष्य गति से ही प्रवेश कर सकता है। लेकिन जब   
वह मोक्षमहल के मनुष्य गति रूपी प्रवेश द्वार पर पहुँचता है, तब वह   
मोह−माया में फंस जाता है और प्रवेश करने का अवसर चूक जाता   
है। ऐसे ही अनन्त काल से अनन्त बार संसार परिभ्रमण हो चुका है।**

जैसे टायर ट्युब में एक वाल्व होता है, जिससे हवा भीतर तो जाती   
है, परन्तु बाहर नहीं आती। **ऐसे ही मोक्ष में जा तो सकते हैं, परन्तु वहाँ   
से लौटकर आ नहीं सकते, अतः मोक्ष ध्रुव है।**

किसी व्यक्ति को एक ही स्थिति में हाथ रखने से दर्द होने पर वह   
हाथ को हिलाता है। **मोक्ष में आत्मा अशरीरी है और अनन्त सुख का   
भोग होने से मोक्ष अचल है।**

चारों गतियों में जन्म, मरण, भूख, प्यास, बीमारी इत्यादि हैं। **परन्तु   
मोक्ष में जन्म, मरण, भूख, प्यास, बीमारी इत्यादि का अभाव होने   
से मोक्ष अनुपम है।**

⁕ **गाथा २** ⁕

**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।  
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं॥ २॥**

***जो जीव दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र में स्थित हैं; उन्हें स्वसमय जानो   
और जो जीव पुद्‌गलकर्म के प्रदेशों में स्थित हैं; उन्हें परसमय जानो।***

जब भारत दूसरे देश से क्रिकेट मैच हारता है, तब कोई व्यक्ति   
टेलीविजन स्क्रीन पर पत्थर फेंकता है। वह स्वयं को भूलकर क्षणिक घटना   
में लीन हो जाता है। समझदार व्यक्ति उत्तेजित नहीं होता और कोई प्रतिक्रिया   
नहीं करता। **मिथ्यादृष्टी स्वयं को भूलकर क्षणिक वस्तु, व्यक्ति और   
घटनाओं में तल्लीन हो जाता है। सम्यग्दृष्टी निज आत्मा में लीन होते   
हैं और भौतिक वस्तु, व्यक्ति एवं घटना से अप्रभावित रहते हैं।**

⁕ **गाथा ३** ⁕

**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।**

**बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥ ३॥**

***एकत्वनिश्चय को प्राप्त जो समय है, वह लोक में सर्वत्र ही   
सुन्दर है। इसलिए एकत्व में दूसरे के साथ बंध की कथा विसंवाद   
पैदा करने वाली है।***

एक व्यक्ति ने गिलास में से दूध पीने के बाद पानी माँगा। उस व्यक्ति   
को बिना धोये ही उसी गिलास में पानी दिया गया। वह पानी दूध वाला और   
गंदा दिखने लगा। यदि दो द्रव्य स्वतंत्र और भिन्न−भिन्न रहें तो शुद्ध रहते हैं,   
यदि वे मिल जाएँ, तो गंदे हो जाते हैं। **यदि आत्मा किसी परद्रव्य में मिल   
जाता, तो अशुद्ध हो जाता। परन्तु आत्मा किसी भी परद्रव्य के साथ   
मिलता ही नहीं है, इसलिए वह अपने स्वभाव से शुद्ध ही रहता है।**

⁕ **गाथा ४** ⁕

**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।  
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥**

***काम, भोग और बंध की कथा तो सम्पूर्ण लोक ने खूब सुनी है,   
उसका परिचय भी प्राप्त किया है और उनका अनुभव भी किया है; अतः   
वह तो सर्वसुलभ ही है; परन्तु पर से भिन्न और अपने से अभिन्न भगवान   
आत्मा की कथा न कभी सुनी है, न उसका कभी परिचय प्राप्त किया   
है और न कभी उसका अनुभव ही किया है; अतः वह सुलभ नहीं है।***

चमड़ी एवं जीभ इन दो इन्द्रियों (काम) से वस्तु को जानने के लिए   
वस्तु को छूना पड़ता है और उन दोनों इन्द्रियों की संख्या एक–एक है।   
नाक, आँख और कान इन तीन इन्द्रियों (भोग) से वस्तु को जानने के लिए   
वस्तु को छूना नहीं पड़ता और उन तीनों इन्द्रियों की संख्या दो–दो है।

पाँच इन्द्रियों द्वारा किसी भी पदार्थ को भोगने के लिए इन चारों की अनिवार्यता है। जैसा कि चॉकलेट को भोगने के लिए चॉकलेट चाहिए।   
चॉकलेट खाने की इच्छा चाहिए। चॉकलेट खाकर पचाने की शक्ति चाहिए   
और अंतराय का अभाव चाहिए। यद्यपि इन चारों का योग दुर्लभ है, फिर   
भी अनन्त बार ऐसा भोग हो चुका होने से वह दुर्लभ नहीं है। भूतकाल में   
जो कभी नहीं हुआ हो, वह दुर्लभ है। **अज्ञानी को आज तक कभी−भी   
आत्मानुभूति नहीं हुई, अतः उसे दुर्लभ कहा है।**

⁕ **गाथा ५** ⁕

**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।  
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥ ५॥**

***मैं उस एकत्व−विभक्त भगवान आत्मा को निज वैभव से   
दिखाता हूँ। यदि मैं दिखाऊँ तो प्रमाण करना, स्वीकार करना और   
यदि चूक जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना।***

परदेश द्वारा आक्रमण के कारण अथवा अपने ही राज्यों के आंतरिक   
युद्ध के कारण भारत देश का नाश हो सकता है। **आत्मा में पुद्‌गल परद्रव्य   
का प्रवेश नहीं हो सकता और आत्मा के अनन्त गुण बैर−बिखेर   
होकर अलग−अलग नहीं हो सकते, इसलिए आत्मा का नाश भी   
नहीं हो सकता। आत्मा नित्य है और सर्वोपरि है।**

लोक में कोई भी व्यक्ति अपने संपूर्ण वैभव को किसी के सामने   
दिखाता नहीं है क्योंकि वह चुराया जा सकता है। आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव   
ने अपना वैभव कम किये बिना अपने ज्ञान वैभव को हमें दिया है। वास्तव में   
ज्ञान वैभव नित्य है। वे छठवें सातवें गुणस्थान में झूलते थे, फिर भी उनकी   
महानता थी कि उन्होंने इस शास्त्र की व्याकरण संबंधी संभावित भूलों के   
लिए क्षमा माँगी। **आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव ने आत्मानुभूति प्रमाण से   
निज आत्मा का स्वरूप समझाया है, जो कि महाप्रामाणिक और सत्य   
है। वे पाठकों को सुझाव देते हैं कि इस शास्त्र का गहराई से अध्ययन   
करना, जिससे आपको आत्मानुभूति एवं अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति हो।**

⁕ **गाथा ६** ⁕

**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**

**एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥ ६॥**

***जो एक ज्ञायकभाव है, वह अप्रमत्त भी नहीं है और प्रमत्त भी   
नहीं है; इसप्रकार उसे शुद्ध कहते हैं और जो ज्ञायकरूप से ज्ञात   
हुआ, वह तो वही है; अन्य कोई नहीं।***

***जीव चौदह गुणस्थानों को पार करके मोक्ष पाता है। आचार्य   
कुन्दकुन्ददेव स्वयं छठे सातवें गुणस्थान में झूलते थे, वे शास्त्र की   
रचना करते समय छठे और आत्मध्यान में लीनता के समय सातवें   
गुणस्थान में थे। वास्तव में आत्मा दोनों गुणस्थानों से पार होने से   
नित्य शुद्ध है।***

***छठे गुणस्थान का गहन अर्थ एक से छह गुणस्थान और सातवें   
गुणस्थान का अर्थ सात से चौदह गुणस्थान है। चौदह गुणस्थान   
अनित्य हैं, जबकि आत्मा नित्य है।***

जैसे दीपक एक ही समय में स्व को और पर को प्रकाशित करता है,   
फिर भी दोनों ही अवस्थाओं में दीपक तो दीपक ही है। **ऐसे ही आत्मा   
का स्वभाव स्व और पर दोनों को प्रकाशित करना है, फिर भी   
आत्मा सदैव आत्मा ही रहता है।**

⁕ **गाथा ७** ⁕

**ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।**

**ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥ ७॥**

***ज्ञानी (आत्मा) के ज्ञान, दर्शन और चारित्र − ये तीन भाव   
व्यवहार से कहे जाते हैं; निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, दर्शन भी नहीं है   
और चारित्र भी नहीं है; ज्ञानी (आत्मा) तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।***

व्यवहार से देश के संचालन हेतु भारत को राज्यों में, जिलों में बाँटा गया है, परन्तु निश्चय से भारत देश एक है। **इसी प्रकार आत्मा को ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुणों से समझाया गया है, फिर भी आत्मा सदैव एक है।**

⁕ **गाथा ८** ⁕

**जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।**

**तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥ ८॥**

***जिसप्रकार अनार्य (म्लेच्छ) भाषा के बिना अनार्य (म्लेच्छ)   
जन को कुछ भी समझाना संभव नहीं है; उसीप्रकार व्यवहार के   
बिना परमार्थ (निश्चय) का कथन अशक्य है।***

घर में बच्चा जिस भाषा में समझ सके, उस भाषा को बोला जाता   
है, फिर भी भाव बड़े के होते हैं। जैसे कि यदि कोई पिता अपने बच्चे से   
कहे कि माँ को बुलाओ, तब वह बच्चा अपनी माँ को बुलाता है। **ऐसे ही   
ज्ञानी अज्ञानी शिष्य को उसकी भाषा में समझाते हैं, फिर भी भाव   
ज्ञानी के हैं। अतः पहले व्यवहारनय से और बाद में निश्चयनय से   
आत्मा को समझाया गया है।**

⁕ **गाथा ९−१०** ⁕

**जो हि सुदेणहिंगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।**

**तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा॥ ९॥**

**जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।**

**णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा॥ १०॥ जुम्मं॥**

***जो जीव श्रुतज्ञान के द्वारा केवल एक शुद्धात्मा को जानते   
हैं, उसे लोक के ज्ञाता ऋषिगण निश्चयश्रुतकेवली कहते हैं। जो   
सर्वश्रुतज्ञान को जानते हैं, उन्हें जिनदेव व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं;   
क्योंकि सब ज्ञान आत्मा ही तो है।***

यदि कोई शक्कर की मिठास चखता है, तो वह शक्कर को चखता है,   
क्योंकि शक्कर मीठी है। **ऐसे ही यदि कोई ज्ञान का अनुभव करता है,**

**तो वह सहज ही आत्मा का अनुभव करता है, क्योंकि आत्मा ज्ञान   
से परिपूर्ण है।**

⁕ **गाथा ११** ⁕

**ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**

**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥ ११॥**

***'व्यवहारनय अभूतार्थ है, शुद्धनय भूतार्थ है' − ऐसा कहा   
गया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है, वह जीव निश्चय से   
सम्यग्दृष्टी होता है।***

***सर्वज्ञ भगवान ने कहा है कि व्यवहारनय असत्य है और   
निश्चयनय सत्य है। जो जीव इस सत्य का अनुभव करता है, वह   
सम्यग्दृष्टी है। जिनवाणी का प्रत्येक वचन नयों की शैली में लिखा   
गया है।***

यदि नय का उल्लेख किया हो या न किया हो, ज्ञानी के वचन में   
नय दृष्टिकोण होता ही है। यथार्थ समझ के बिना चारित्र यथार्थ फल नहीं   
देता है। यथार्थ दृष्टिकोण से वस्तु को जाने बिना यथार्थ समझ नहीं आ   
सकती। **अतः आत्मार्थी को चाहिए कि वह ज्ञानियों के वचनों को   
नय अपेक्षा से समझें।**

अज्ञानी कहता है कि व्यवहारनय छोड़ने योग्य है, क्योंकि उससे   
आत्मानुभूति नहीं होती है और निश्चयनय उपयोगी और श्रेष्ठ है। **ज्ञानी   
उन्हें कहते हैं कि व्यवहारनय सर्वथा हेय होता, तो ज्ञानी व्यवहार   
का पालन क्यों करते और उपदेश भी क्यों देते ? अतः व्यवहारनय   
सर्वथा निषेध करने योग्य नहीं है।**

**प्रत्येक नय की यथायोग्य अपेक्षा समझना महत्वपूर्ण है।   
क्योंकि शास्त्रों में लिखा हुआ कुछ भी अप्रयोजनभूत नहीं है। यदि   
कोई व्यक्ति किसी विषय को नहीं समझता है, तो वह उसके अपने**

**ज्ञान की कमजोरी के कारण नय अपेक्षा समझने में असमर्थ है।   
इसप्रकार प्रत्येक जीव अज्ञान से मुक्त हो सकता है। और इतना ही   
नहीं, प्रत्येक जीव को प्रत्येक नय को समझकर अपने जीवन में   
यथायोग्य ग्रहण करना चाहिए।**

⁕ **गाथा १२** ⁕

**सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।**

**ववहारदेसिदा पुणं जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥ १२॥**

***जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान हुए तथा पूर्ण ज्ञान–  
चारित्रवान हो गये हैं, उन्हें शुद्धात्मा का उपदेश करने वाला शुद्धनय   
जाननेयोग्य है और जो जीव अपरमभाव में स्थित हैं, श्रद्धा–ज्ञान–  
चारित्र के पूर्णभाव को नहीं पहुँच सके हैं, साधक–अवस्था में ही   
स्थित हैं, वे व्यवहारनय द्वारा उपदेश करने योग्य हैं।***

जैसे यदि किसी को मंदिर जाना है, तो उसके पास जाने–आने की   
सुविधा होनी चाहिए। यदि कोई गाड़ी से मंदिर की यात्रा करता है, तो उसे   
मंदिर पहुँचने पर कार छोड़ना जरूरी है। **ऐसे ही पूर्ण शुद्ध पर्याय रूपी   
लक्ष्य की प्राप्ति होने पर व्यवहारनय छोड़ देना चाहिए।**

जैसे सीढ़ी चढ़ते समय, व्यक्ति पिछले चरण को पीछे छोड़कर ऊपर   
जाता है। याद रहें, पीछे की छोड़ देना, मगर तोड़ मत देना। क्योंकि ऐसे   
अनेक जीव हैं, जो उसी मार्ग पर चलकर आगे जाने वाले हैं। **ऐसे ही   
व्यवहारनय छोड़ने योग्य है, मगर तोड़ने योग्य नहीं।**

जैसे केले का छिलका केले की रक्षा करता है, अतः जब तक अन्दर   
का केला खाया नहीं जाता, तब तक छिलके को पूरी तरह से नष्ट नहीं   
करना चाहिए। **ऐसे ही व्यवहारनय आत्मा का रक्षक है और निश्चयनय   
पूरी तरह से समझ में आ जाने पर ही व्यवहारनय छोड़ने योग्य है।**

जैसे कपड़े को धोने के लिए साबुन का उपयोग होता है, साबुन के झाग   
भी दाग हैं। जब कपड़े की धुलाई हो जाती है, तब साबुन   
और मैल दोनों को धो दिया जाता है। **ऐसे ही आत्मा की शुद्धि के   
लिए व्यवहारनय उपयोगी है, परन्तु जैसे ही आत्मा शुद्ध होता है,   
व्यवहारनय छूट जाता है और आत्मा में शुद्ध अवस्था टिककर रहती है।**

⁕ **गाथा १३** ⁕

**भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।**

**आसवसंवरणिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ १३॥**

***भूतार्थ से जाने हुए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर,   
निर्जरा, बंध और मोक्ष − ये नवतत्त्व ही सम्यग्दर्शन हैं।***

अगर नौ अलग−अलग धातुओं पर सोना चढ़ाया जाए, तो वे सभी   
ऐसी दिखेंगी, मानो वे सोना हों। **इसीप्रकार, आत्मा का ज्ञान नौ तत्त्वों   
को जानता है, उनमें आत्मा का ज्ञान ही व्यक्त होता है। वे सब ऐसे   
दिखाई देंगे मानो वे एक ज्ञान ही हैं।**

व्यक्ति को प्रत्येक दर्पण में अपना ही चेहरा दिखाई देता है। **ऐसे ही   
ज्ञानी ज्ञान में जानने में आते समस्त ज्ञेयों में अपने आत्मा को जानते हैं।**

⁕ **गाथा १४** ⁕

**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।**

**अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥ १४॥**

***जो नय आत्मा को बंधरहित और पर के स्पर्श से रहित,   
अन्यत्वरहित, चलाचलतारहित, विशेषरहित एवं अन्य के संयोग से   
रहित देखता है, जानता है; हे शिष्य ! तू उसे शुद्धनय जान।***

**निश्चयनय से आत्मा को जानने पर ही आत्मानुभूति संभव है।**

यदि कोई वस्तु रूखी हो, तो चिकनी वस्तु के साथ एवं कोई वस्तु   
चिकनी हो, तो रूखी वस्तु के साथ बंध होता है। **आत्मा न तो रूखा है   
और न ही चिकना। क्योंकि ये तो पुद्‌गल द्रव्य की पर्यायें हैं। अतः   
आत्मा अबद्ध है।**

जैसे गाय को गले में रस्सी से बाँधा जाता है। वास्तव में रस्सी को   
रस्सी से बाँधा जाता है, गाय को नहीं। **कार्माण वर्गणा का कार्माण   
वर्गणा के साथ बंध होता है, आत्मा के साथ नहीं।**

**स्पर्श तो पुद्‌गल द्रव्य का गुण है और जीव में स्पर्श होता नहीं   
है, अतः आत्मा अस्पर्शी है।**

सोना हमेशा सोना होता है, चाहे वह किसी भी आकार का हो। (जैसे   
कि अंगूठी, चूड़ी, झुमके, आदि)। **ऐसे ही आत्मा मनुष्य, देव, तिर्यंच   
या नारकी आदि किसी भी अवस्था में अपरिणामी है।**

समुद्र की लहरों के बावजूद भी समुद्र में कभी बाढ़ नहीं आ सकती,   
लेकिन नदी में बाढ़ आ सकती है। अतः नदी के किनारे पर रहने में असुरक्षा   
है। परन्तु सागर के पास रहना सुरक्षित है। **आत्मा समुद्र के समान है   
जिसके योग में अनेक उतार−चढ़ाव आते हैं, फिर भी आत्मा नित्य है।**

मोमबत्ती की लौ हवा के साथ टिमटिमा सकती है, लेकिन उसकी   
लौ सदैव एकरूप बनी रहती है। **इसीप्रकार आत्मा किसी भी संयोग   
एवं वियोग में नित्य स्थिर है।**

भारत में कई राज्य हैं, फिर भी वह अखंड देश है। **उसीप्रकार आत्मा   
में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनन्त गुण हैं, फिर भी आत्मा अखंड है।**

दर्पण के सामने जो भी वस्तुयें आती हैं, वह उसे प्रतिबिम्बित करता   
है, लेकिन उनके साथ कभी मिलता नहीं है। **इसी प्रकार भौतिक पदार्थ   
आत्मा के ज्ञान में जानने में तो आते हैं, लेकिन आत्मा में मिलते नहीं   
हैं। आत्मा अन्य ही रहता है।**

⁕ **गाथा १५** ⁕

**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।**

**अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥ १५॥**

***जो पुरुष आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष ( तथा   
उपलक्षण से नियत और असंयुक्त) देखता है; वह सम्पूर्ण जिनशासन   
को देखता है। वह जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत और अभ्यन्तर ज्ञानरूप   
भावश्रुतवाला है।***

क्या कोहिनूर हीरा आँखों से ज्यादा कीमती है ? मरने के बाद शरीर हीरा   
नहीं देख सकता। अतः निश्चय ही आँखों से अधिक मूल्यवान आत्मा है।

जब कोई शादी में जाता है तो दूल्हा और दुल्हन समारोह के   
केन्द्रबिन्दु होते हैं। उनकी मौजूदगी के बिना व्यवस्था किसी काम की नहीं   
है। **तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि का केन्द्रबिन्दु भगवान आत्मा है। आत्मा   
के साथ–साथ छह द्रव्यों के समूह रूप संपूर्ण विश्व का   
वर्णन भी अंततः आत्मा को समझने के लिए ही किया है।**

**सभी आत्माओं को एक ही उपदेश दिया जाता है। मनुष्य,   
देव और तिर्यंच, ये सभी निजात्मा की अनुभूति के लिए एक समान   
सामर्थ्यवान हैं।** उदारहण के रूप में, पार्श्वनाथ भगवान को हाथी के भव   
में और महावीर भगवान को सिंह के भव में सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ था।

⁕ **गाथा १६** ⁕

**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**

**ताणि पुणं जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥ १६॥**

***साधुपुरुष को दर्शन – ज्ञान – चारित्र का सदा सेवन करना चाहिए   
और उन तीनों को निश्चय से एक आत्मा ही जानो।***

आँखें देखती हैं, लेकिन देखने के लिए आँखों का शरीर के साथ   
होना जरूरी है। देखने के लिए आँखों का शरीर में होना जरूरी है। यदि वे   
शरीर या आत्मा से अलग होती तो देख नहीं सकती। **कोई भी व्यक्ति   
दिमाग से नहीं, बल्कि ज्ञान स्वभाव से जानता है।**

जैसे सागर की बूंद को चखना ही सागर को चखना है। **ऐसे ही   
दर्शन, ज्ञान, और चरित्र का अनुभव ही आत्मा का अनुभव है।**

पुद्‌गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गंध और वर्ण गुण होते हैं। वे गुण पुद्‌गल   
द्रव्य से अलग नहीं हो सकते। **ऐसे ही आत्मा में दर्शन, ज्ञान और चरित्र   
गुण हैं, वे गुण आत्मा से अलग नहीं हो सकते। कोई भी द्रव्य अपने   
अनन्त गुणों से अलग नहीं हो सकता।**

⁕ **गाथा १७−१८** ⁕

**जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।**

**तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥ १७॥**

**एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।**

**अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥ १८॥**

***जिसप्रकार कोई धन का अर्थी पुरुष राजा को जानकर उसकी   
श्रद्धा करता है और फिर उसका प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है,   
उसकी लगन से सेवा करता है। उसीप्रकार मोक्ष के इच्छुक पुरुषों   
को जीवरूपी राजा को जानना चाहिए और फिर उसका श्रद्धान   
करना चाहिए, उसके बाद उसी का अनुचरण करना चाहिए; अर्थात्   
अनुभव के द्वारा उसमें तन्मय हो जाना चाहिए।***

जब कोई नए घर में जाकर रहना चाहता है, तो सब से पहले उस   
घर को जानता है। घर खरीदने के बाद, वह उसमें ममत्व करता है। फिर   
वह पैसा खर्च करके और मेहनत करके घर का नवीनीकरण और सजावट

करता है। जब वह घर में बस जाता है, तब वह एक ही समय में घर को   
जानता है, मानता है और सर्वस्व समर्पण करता है। **ऐसे ही ज्ञान, श्रद्धा   
और चारित्र एक के बाद एक होते हैं। परन्तु निर्विकल्प आत्मानुभूति   
होने पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र एक ही समय में   
प्रकट होते हैं।**

⁕ **गाथा १९** ⁕

**कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।**

**जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥ १९॥**

***जब तक यह आत्मा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों, मोह–  
राग–द्वेषादि भावकर्मों एवं शरीरादि नोकर्मों में अहंबुद्धि रखता है,   
ममत्वबुद्धि रखता है; यह मानता रहता है कि 'ये सभी मैं हूँ और   
मुझमें ये सभी कर्म − नोकर्म हैं' तब तक अप्रतिबुद्ध रहता है, अज्ञानी रहता है।***

**संसार परिभ्रमण के कारण कर्म तीन प्रकार के होते हैं। भावकर्म   
(आत्मा में उत्पन्न होने वाले विकारी भाव), द्रव्यकर्म (विकारी   
भावों के निमित्त से आत्मा में बँधने वाली कार्माण वर्गणा) और   
नोकर्म (भावकर्म में निमित्त होने वाले संयोग, जैसे कि शरीर, धन,   
वैभव, घर, परिवार)।**

**आत्मा शरीर में रहता है और विकारी भाव आत्मा में रहते हैं।   
फिर भी आत्मा उन दोनों से न्यारा है।** जैसे कि किसी व्यक्ति की तुलना   
उसके पिता और उसके बच्चे के साथ की जाती है। वहाँ उसका पिता   
शरीर की तरह है और उसका बच्चा विकारी भाव की तरह है। लेकिन वह   
व्यक्ति स्वयं उन दोनों से न्यारा है। पिता को छोड़ना आसान है, मगर बेटे   
को छोड़ना बहुत मुश्किल है। **देह को छोड़ना आसान है, लेकिन देहादि   
संयोगों में अपनापन छोड़ना अति कठिन है।**

⁕ **गाथा २०−२१−२२** ⁕

**अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।**

**अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा॥ २०॥**

**आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।**

**होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि॥२१॥**

**एयं तु असम्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।**

**भूदत्थं जाणंतो न करेदि दु तं असंमूढो ॥ २२ ॥**

***जो पुरुष अपने से भिन्न परद्रव्यों में – सचित्त स्त्री–पुत्रादिक में,   
अचित्त धन–धान्यादिक में, मिश्र ग्राम–नगरादिक में ऐसा विकल्प   
करता है, मानता है कि मैं ये हूँ, ये सब द्रव्य मैं हूँ; मैं इनका हूँ, ये मेरे   
हैं; ये मेरे पहले थे, इनका मैं पहले था; तथा ये सब भविष्य में मेरे   
होंगे, मैं भी भविष्य में इनका होऊँगा – वह व्यक्ति मूढ़ है, अज्ञानी   
है; किन्तु जो पुरुष वस्तु का वास्तविक स्वरूप जानता हुआ ऐसे झूठे   
विकल्प नहीं करता है, वह ज्ञानी है।***

शादी होते ही सहज ही सारे परिवार से रिश्ता जुड़ जाता है। यदि   
पति के साथ रिश्ता टूट जाए, तो अन्य सभी रिश्ते भी टूट जाते हैं। **जिस   
व्यक्ति को अपने शरीर में अपनापन होता है, उस व्यक्ति को शरीर से   
संबंधित सभी संयोगों के साथ सहज ही अपनापन होता है। (जैसे –   
माता−पिता, बाल−बच्चे, धन, भोजन, गाँव, नगर, आदि)। यदि   
शरीर में से अपनापन टूट जाए, तो अन्य सभी से अपनापन टूट   
जाता है। वास्तव में सभी रिश्ते शरीर से अलग हैं और किसी भी प्रकार से   
उससे जुड़े नहीं हैं।**

यदि किसी व्यक्ति के पास अनुकूल चेतन संयोग तो हैं, लेकिन धन,   
घर, गाड़ी आदि नहीं हैं, वह व्यक्ति दुःखी है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के

पास धन, घर, गाड़ी आदि तो हैं, लेकिन कोई संतान नहीं है, वह व्यक्ति   
भी दुःखी है। दोनों व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि चेतन और अचेतन दोनों   
संयोग मिलने पर सुख मिलेगा। हालाँकि, जिन व्यक्तियों के पास ये दोनों   
हैं, वे भी दुःखी हैं। **वास्तव में, क्षणिक भोगों में किंचित् भी सुख नहीं   
है, लेकिन अज्ञानी इसे नहीं मानता है।**

⁕ **गाथा २३−२४−२५** ⁕

**अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।**

**बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो॥ २३॥**

**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।**

**कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं॥ २४॥**

**जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।**

**तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं॥ २५॥**

***जिसकी मति अज्ञान से मोहित है और जो मोह–राग–द्वेष   
आदि अनेक भावों से युक्त है; ऐसा जीव कहता है कि ये शरीरादि   
बद्ध और धन–धान्यादि अबद्ध पुद्‌गलद्रव्य मेरे हैं। उसे समझाते   
हुए आचार्यदेव कहते हैं कि सर्वज्ञ के ज्ञान द्वारा देखा गया जो सदा   
उपयोग लक्षण वाला जीव है, वह पुद्‌गलद्रव्यरूप कैसे हो सकता   
है कि जिससे तू कहता है कि यह पुद्‌गलद्रव्य मेरा है। यदि जीवद्रव्य   
पुद्‌गलद्रव्यरूप हो जाये और पुद्‌गलद्रव्य जीवत्व को प्राप्त करे तो   
तू कह सकता है कि यह पुद्‌गलद्रव्य मेरा है।***

**सभी आत्मा चेतन हैं। सभी पुद्‌गल जड़ हैं। शरीर और आत्मा   
एक साथ होने पर भी शरीर जड़ है।**

जैसे शराबी बेहोशी में भ्रमित होने के कारण यह नहीं जानता कि   
उसकी पत्नी कौन है ? और वह कहाँ रहता है ? वह अपने घर जाने के लिए

इधर−उधर घूमता रहता है। **प्रत्येक अज्ञानी भी शराबी की तरह अज्ञान के   
कारण बेहोश है। वह जन्म और मरण करके संसार परिभ्रमण करता है।**

भारत कभी अमेरिका नहीं जा सकता, परन्तु भारतीय अमेरिका जा   
सकता है। भारतीय ऐसा कह सकता है कि भारत मेरा देश है, परन्तु वह   
मानता नहीं है कि वह भारत का मालिक है और भारत को बेच सकता   
है। **ऐसे ही आत्मा शरीर से मिला नहीं है, आत्मा सिर्फ मान सकता है   
कि सभी पुद्‌गल संयोग मेरे हैं, फिर भी आत्मा उनका स्वामी नहीं है।**

⁕ **गाथा २६** ⁕

**जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंधुदी चेव।**

**सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो॥ २६॥**

***अज्ञानी जीव कहता है कि यदि जीव शरीर नहीं है तो तीर्थंकरों   
और आचार्यों की जिनागम में जो स्तुति की गई है; वह सभी मिथ्या   
है। इसलिए हम समझते हैं कि देह ही आत्मा है।***

**आत्मा और शरीर भिन्न−भिन्न होने पर भी तीर्थंकर भगवान के   
शरीर की स्तुति और पूजा क्यों की जाती है ?** जैसा कि विद्युत प्रवाह और   
उसके माध्यम से चलते सभी विद्युत उपकरण भिन्न−भिन्न होने पर भी क्यों   
विद्युत उपकरणों की प्रशंसा की जाती है ? शरीर और विद्युत उपकरण आँखों   
से दिखाई देते हैं, जबकि **आत्मा और विद्युत प्रवाह आँखों से दिखाई   
नहीं देते, फिर भी आत्मा और विद्युत प्रवाह का अनुभव हो सकता है।**

⁕ **गाथा २७** ⁕

**ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।**

**ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो॥ २७॥**

***व्यवहारनय तो यह कहता है कि जीव और शरीर एक ही है;   
किन्तु निश्चयनय के अभिप्राय से जीव और शरीर कभी भी एक   
पदार्थ नहीं हैं।***

**व्यवहारनय एवं निश्चयनय, ये दोनों नय परस्पर विरोधी दिखाई   
देते हैं, परन्तु वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।** दोनों नय एक सिक्के के दो   
पहलू जैसे हैं एवं दो देशों की सरहद पर लिखे दिशा सूचक स्तम्भ जैसे हैं।

माता और पिता दो व्यक्तियों का मिलन होने पर भी माता−पिता एक   
रूप ही जाने जाते हैं। **व्यवहारनय से मनुष्य जीवन आत्मा और शरीर   
का संयोग होने पर भी मनुष्य को एक रूप जाना जाता है।** वास्तव   
में माता और पिता की सत्ता स्वतंत्र है। **निश्चयनय से आत्मा और शरीर   
स्वतंत्र सत्ता स्वरूप द्रव्य हैं।**

⁕ **गाथा २८** ⁕

**इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी।**

**मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं॥ २८॥**

***जीव से भिन्न इस पुद्‌गलमय देह की स्तुति करके साधु ऐसा   
मानते हैं कि मैंने केवली भगवान की स्तुति की और वन्दना की।***

**इस गाथा में 'व्यवहारनय की मुख्यता है।**

जब बच्चा अच्छा प्रदर्शन करता है, तब उसके माता−पिता की   
प्रशंसा की जाती है। ऐसे ही **मुनिराज भले ही तीर्थंकर भगवान के शरीर   
की स्तुति करते हों, फिर भी उनके अभिप्राय में तीर्थंकर भगवान के   
आत्मा की स्तुति ही होती है।**

यदि कोई धनवान व्यक्ति फटे हुए कपड़े पहनता है, तो उसे फैशन   
कहते हैं। यदि वे ही कपड़े किसी गरीब ने पहने हों, तो उसे दयापात्र कहते   
हैं। ऐसे ही **तीर्थंकर भगवान के शरीर के परमाणु पूज्य हैं, वे ही परमाणु**

**जब पलट कर हमारे शरीर के रूप में आते हैं, तब वे पूज्य नहीं हैं।   
व्यवहारनय से तीर्थंकर भगवान के शरीर की स्तुति ही भगवान की   
स्तुति है।**

⁕ **गाथा २९** ⁕

**तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।**

**केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि॥ २९॥**

***किन्तु वह स्तवन निश्चयनय से योग्य नहीं है; क्योंकि शरीर के   
गुण केवली के गुण नहीं होते। जो केवली के गुणों की स्तुति करता   
है, वह परमार्थ से केवली की स्तुति करता है।***

एक कवि को राजा के महल में भोजन के लिए आमंत्रित किया गया   
था। वह फटे−पुराने कपड़े में पहुँचा और चौकीदार ने उसे अंदर प्रवेश   
नहीं करने दिया। उसने अपने कपड़े बदले और बहुत सुन्दर कपड़े पहनकर   
वापस आया और गार्ड ने उसे अंदर जाने दिया। जब कवि भोजन करने   
बैठा तो वह सारा भोजन अपनी जेब में भरने लगा। जब राजा ने उससे   
पूछा कि वह ऐसा क्यों कर रहा है, तो उसने उत्तर दिया कि उसके वस्त्रों   
को महल में प्रवेश मिला है, न कि उसे ! इसीप्रकार **तीर्थंकर भगवान के   
बाह्य रूप को नहीं, बल्कि उनके आत्मा को प्रधानता देनी चाहिए।**

⁕ **गाथा ३०** ⁕

**णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।**

**देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति॥ ३०॥**

***जिसप्रकार नगर का वर्णन करने पर भी, वह वर्णन राजा का   
वर्णन नहीं हो जाता; उसीप्रकार शरीर के गुणों का स्तवन करने पर   
केवली के गुणों का स्तवन नहीं हो जाता।***

इस गाथा में निश्चयनय की मुख्यता है।

जैसे किसी व्यक्ति के घर की प्रशंसा करके उसकी प्रशंसा नहीं की   
जा सकती। ऐसे ही **शरीर का वर्णन करके आत्मा का वर्णन नहीं किया   
जा सकता।**

⁕ **गाथा ३१** ⁕

**जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**

**तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥ ३१॥**

***जो इन्द्रियों को जीतकर आत्मा को अन्य द्रव्यों से अधिक   
(भिन्न) जानते हैं; वे वस्तुतः जितेन्द्रिय हैं – ऐसा निश्चयनय में   
स्थित साधुजन कहते हैं।***

**सारा विश्व दो भागों में विभाजित हो सकता है। स्व (आत्मा)   
एवं पर (समस्त परद्रव्य)।** फुटबॉल के मैच में खिलाड़ियों की दो टीमें   
होती हैं, जो उनके कपड़े के रंगों से पहचानी जाती हैं। **ऐसे ही स्व और   
पर के बीच उनके गुणों के द्वारा भेद जाना जा सकता है।**

महाभारत में युद्ध से पहले, जब श्री कृष्ण ने दुर्योधन और अर्जुन से   
उनके और उनकी सेना के बीच चयन करने के लिए कहा तो दुर्योधन   
ने खुशी–खुशी सेना को चुना क्योंकि उसने सोचा कि सेना श्री कृष्ण से   
भी अधिक कीमती है। अर्जुन के पास कोई विकल्प नहीं था, लेकिन जो   
भी उसे मिला था, उससे वह बहुत खुश था। वह युद्ध शुरू होने से पहले   
ही श्री कृष्ण के कारण युद्ध जीत गया, जिन्होंने शस्त्र नहीं उठाया, केवल   
अर्जुन को मार्गदर्शन दिया और प्रेरित किया। इसीतरह, **प्रत्येक व्यक्ति के   
पास चुनाव के लिए एक विकल्प होता है। आत्मा या सारा क्षणिक   
जगत। उसे हमेशा आत्मा को चुनना चाहिए, क्योंकि आत्मा नित्य   
है और भौतिक वस्तुयें क्षणिक है। फिर वह जानता है कि वह मोक्ष   
के सच्चे मार्ग पर चल रहा है।**

⁕ **गाथा ३२** ⁕

**जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।**

**तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति॥ ३२॥**

***जो मुनि मोह को जीतकर अपने आत्मा को ज्ञानस्वभाव के   
द्वारा अन्य द्रव्यभावों से अधिक जानता है, भिन्न जानता है; उस   
मुनि को परमार्थ के जाननेवाले जितमोह कहते हैं।***

हीन आचरण वाला व्यक्ति रास्ते पर पड़ी रुपये की गड्डी को उठा   
लेता है। सदाचारी व्यक्ति उसे वहीं रहने देता है। **दूसरे व्यक्ति ने लोभ   
और परिग्रह पर विजय पाई है। वर्धमान ने तीस वर्ष की आयु में   
समस्त प्रकार के मोह का त्याग करके मुनिधर्म अंगीकार किया और   
बाद में वे भगवान महावीर हुए।**

⁕ **गाथा ३३** ⁕

**जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।**

**तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं॥ ३३॥**

**जिसने मोह को जीत लिया है, ऐसे साधु के जब मोह क्षीण   
होकर सत्ता में से नष्ट हो ; तब उस साधु को निश्चयनय के जानकार   
क्षीणमोह कहते हैं।**

जैसे पानी के गिलास में जो रजकण नीचे दबे हुए हैं, वे थोड़ी देर   
बाद फिर से ऊपर आ सकते हैं। यदि रजकण को पूरी तरह से बाहर निकाल   
दिया जाए, तो पानी पुनः गंदा नहीं होता है। ऐसे ही **आत्मा में उत्पन्न   
होने वाले मोह, राग और द्वेष के भाव हमेशा के लिए नष्ट हो जाएँ,   
तो आत्मा पुनः मलिन नहीं होता है।**

जिस ऋषि को सपने में रूपसुंदरी और नृत्यांगना दिखाई देती है,   
उसने अपने विकारों को दबाया है, परन्तु पूरी तरह से नष्ट नहीं किया है।   
इसलिए मलिन भाव छुपी तरह से बार–बार उत्पन्न होते हैं।

**निश्चयनय से स्तुति के तीन प्रकार होते हैं। इन्द्रियों पर विजय   
पाना जघन्य स्तुति है, विकारी भावों पर विजय पाना मध्यम स्तुति   
है और विकारी भावों को क्षय करना उत्कृष्ट स्तुति है।**

⁕ **गाथा ३४** ⁕

**सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।**

**तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं॥ ३४॥**

***जिसकारण यह आत्मा अपने आत्मा से भिन्न समस्त पर–  
पदार्थों का 'वे पर हैं' – ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है, त्याग   
करता है; उसी कारण प्रत्याख्यान ज्ञान ही है। —******ऐसा नियम से   
जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था   
होना ही प्रत्याख्यान है, त्याग है; अन्य कुछ नहीं।***

यदि कपड़े पर डिज़ाइन के साथ−साथ मैल भी हो, जो कि डिज़ाइन   
जैसा दिखता हो, तो जो व्यक्ति मैल को भी डिज़ाइन मानकर बैठा है,   
वह मैल को दूर करने के लिए कपड़े को धोयेगा ही नहीं। **ऐसे ही प्रत्येक   
जीव को पर का त्याग करने के लिए स्व एवं पर के बीच भेद जानना   
चाहिए। पर का त्याग करने के लिए स्व एवं पर का ज्ञान होना   
अनिवार्य है।**

**आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह किसी भी वस्तु के साथ   
मिल ही नहीं सकता, इसलिए वस्तु का त्याग संभव नहीं है। स्व एवं   
पर के बीच भेद जानकर अज्ञान से मुक्त होना ही सच्चा त्याग है।**

⁕ **गाथा ३५** ⁕

**जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।**

**तह सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे णाणी॥ ३५॥**

**जिसप्रकार लोक में कोई पुरुष परवस्तु को 'यह परवस्तु है' –   
ऐसा जानकर परवस्तु का त्याग करता है; उसीप्रकार ज्ञानी पुरुष सम  
स्त परद्रव्यों के भावों को 'ये परभाव हैं' – ऐसा जानकर छोड़ देते हैं।**

जैसे कैंसर के मरीज को यह जानना चाहिए कि कैंसर की गाँठ शरीर   
में पैदा हुई है। भले ही वह शरीर में पैदा हुई है, फिर भी दूर करने योग्य है,   
क्योंकि वह सारे शरीर को नुकसान पहुँचा सकती है। **ऐसे ही मोह, राग एवं   
द्वेष सहित आत्मा को यह जानना चाहिए कि वे मलिन भाव आत्मा   
की अवस्थाएँ हैं। भले ही वे भाव आत्मा में उत्पन्न हुए हों, फिर   
भी वे दूर करने योग्य हैं, क्योंकि वे आत्मा के लिए हानिकारक हैं।**

⁕ **गाथा ३६** ⁕

**णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।**

**तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥ ३६ ॥**

***स्व−पर और सिद्धान्त के जानकार आचार्यदेव ऐसा कहते हैं   
कि 'मोह मेरा कुछ भी नहीं है, मैं तो एक उपयोगमय ही हूँ' – ऐसा   
जो जानता है, वह मोह से निर्मम है।***

जलती मोमबत्ती का परिणाम चार प्रकार से आता है। – मोमबत्ती,   
ज्योति, धुआँ और उसके आस−पास बहती हवा। मोमबत्ती जलाने का   
प्रयोजन ज्योति है, परन्तु उसके साथ−साथ धुआँ भी होता है, जिसे   
ऑक्सीजन की अनिवार्यता है। ज्योति की उपस्थिति में धुआँ दिखाई   
दे सकता है। **आत्मा मोमबत्ती के समान है, ज्ञान ज्योति के समान**

**है, विकारी भाव धुएँ के समान हैं और कर्म का उदय ऑक्सीजन   
के समान है। विकारी भावों की उत्पत्ति में कर्मोदय के निमित्त की   
अनिवार्यता है, परन्तु वह निमित्त दिखाई नहीं दे सकता। फिर भी वे   
विकारी भाव आत्मा के ज्ञान द्वारा जानने में आ सकते हैं।**

⁕ **गाथा ३७** ⁕

**णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।**

**तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥ ३७॥**

***स्व−पर और सिद्धान्त के जानकार आचार्यदेव ऐसा कहते हैं   
कि ये धर्म आदि द्रव्य मेरे कुछ भी नहीं हैं; मैं तो एक उपयोगमय ही   
हूँ – ऐसा जो जानता है, वह धर्म आदि द्रव्यों से निर्मम है।***

जैसे मुंबई में रहने मात्र से कोई मुंबई का मालिक नहीं हो जाता, ऐसे   
ही **घर में, शरीर में, परिवार इत्यादि के साथ रहने मात्र से आत्मा घर,   
शरीर और परिवार इत्यादि का मालिक नहीं हो जाता।**

घर अथवा दूसरी गाड़ियाँ अपनी गाड़ी के दर्पण में प्रतिबिम्बित होने   
से कोई घर या दूसरी गाड़ियों का मालिक नहीं हो जाता। **आत्मा अपनी   
गाड़ी के समान है। ज्ञान दर्पण के समान है। धर्म, पुद्‌गल और अन्य   
परद्रव्य आत्मा के ज्ञान में प्रतिबिम्बित होते हैं, परन्तु आत्मा उनका   
मालिक नहीं है। आत्मा अपने ज्ञान स्वभाव का स्वामी है।**

⁕ **गाथा ३८** ⁕

**अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी।**

**ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥ ३८॥**

***दर्शन − ज्ञान − चारित्र परिणत आत्मा यह जानता है कि निश्चय   
से मैं सदा ही एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन − ज्ञानमय हूँ, अरूपी हूँ और अन्य***

***द्रव्य किंचित्मात्र भी मेरे नहीं हैं, परमाणुमात्र भी मेरे नहीं हैं।***

जैसे भारत देश अनेक राज्य, जिले और गाँव आदि की एकता वाला   
एक संयुक्त देश है, **ऐसे ही आत्मा भी अनन्त गुणों की एकता वाला   
एक द्रव्य है।**

जैसे आटा, मलाई, चीनी, दूध, आदि का समूह एक केक है, ऐसे   
ही आत्मा में अनन्त गुण हैं, **फिर भी आत्मा एक ही है।**

जैसे यदि पानी शुद्ध हो तो ही पानी के गिलास के तल पर जमी गंदगी   
दिखाई देती है, **ऐसे ही आत्मा की मलिनता जानने में आती है, वह   
इस बात को सिद्ध करती है कि आत्मा सदैव शुद्ध है।**

जैसे हवा दिखाई नहीं दे सकती, परन्तु उसका स्पर्श करके अनुभव   
हो सकता है और वह सदैव सत्ता स्वरूप है। **ऐसे ही आत्मा अरूपी,   
अस्पर्शी, अरस, अगंध और अशब्द होने से पाँच इन्द्रिय और मन के   
द्वारा जानने में नहीं आ सकता। फिर भी उसकी अपनी सत्ता है और   
वह ज्ञान द्वारा जानने में आ सकता है।**

**जीवाजीव अधिकार**

⁕ **गाथा ३९–४०–४१–४२–४३** ⁕

**अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।**

**जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेंति॥ ३९॥**

**अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं।**

**मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति॥ ४०॥**

**कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।**

**तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो॥ ४१॥**

**जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति।**

**अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति॥ ४२॥**

**एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।**

**ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा॥ ४३॥**

***आत्मा को नहीं जाननेवाले पर को ही आत्मा माननेवाले कई   
मूढ़ लोग तो अध्यवसान को और कर्म को जीव कहते हैं। अन्य   
कोई लोग तीव्र – मन्द अनुभागगत अध्यवसानों को जीव मानते हैं:   
दूसरे कोई नोकर्म को जीव मानते हैं। अन्य कोई कर्म के उदय को   
जीव मानते हैं और कोई तीव्र – मंदतारूप गुणों से भेद को प्राप्त   
कर्म के अनुभाग को जीव इच्छते हैं, मानते हैं। अन्य कोई जीव   
और कर्म – दोनों के मिले रूप को जीव मानते हैं और कोई अन्य   
कर्म के संयोग को ही जीव मानते हैं। इसप्रकार के तथा अन्य भी***

***अनेकप्रकार के दुर्बुद्धि, मिथ्यादृष्टि जीव पर को आत्मा कहते हैं। वे   
सभी परमार्थवादी, सत्यार्थवादी, सत्य बोलनेवाले नहीं हैं – ऐसा   
निश्चयवादियों ने, सत्यार्थवादियों ने, सत्य बोलनेवालों ने कहा है।***

एक व्यक्ति को दुकानदार से सामान खरीदने के बाद पाँच रुपये का   
एक सिक्का मिला। जब वह थोड़ी देर बाद कुछ और वस्तु खरीदने के लिए   
उसी दुकानदार के पास गया, तो दुकानदार ने उसे बताया कि यह पाँच रुपये   
का सिक्का नहीं है, बल्कि पचास पैसे के आपस में चिपके हुए दो सिक्के हैं।   
उस व्यक्ति को वहाँ चार रूपये का नुकसान हुआ। **प्रत्येक अज्ञानी भी   
आपस में चिपके हुए दो सिक्के को एक मानने की भाँति आत्मा और   
शरीर को एक मानकर नुकसान भोगता है। वह जन्म–मरण करके   
चार गतियों में परिभ्रमण का नुकसान भोगता है।**

एक पिता किसी की शादी में अपने बदले में अपने बेटे को भेजता   
है। वह मानता है कि मेरा बेटा गया है, वह मैं ही तो हूँ। **अज्ञानी भी ऐसा   
मानता है कि यह शरीर है, वह मैं ही तो हूँ।**

जैसे कोई व्यक्ति किसी कंपनी के एक शेयर को अपने पास रखकर   
मानता है कि वह पूरी कंपनी का मालिक है। **ऐसे ही मनुष्य भव एक   
आत्मा और शरीर के अनन्त परमाणुओं का संयोग है। अज्ञानी   
मानता है कि वह अपने आत्मा और शरीर सभी का मालिक है।**

**कई अज्ञानी ऐसे हैं, जिन्हें घर, पैसा, गाड़ी, आदि भौतिक   
पदार्थ और गैर− भौतिक मोबाइल नंबर, कार नंबर, आदि से   
अपनापन होता है।**

जैसे पानी और दूध दो अलग−अलग वस्तुएँ हैं, लेकिन जब वे दोनों   
मिले हों, तब लोग उसे एक वस्तु मानते हैं। **ऐसे ही शरीर और आत्मा   
दो अलग–अलग द्रव्य हैं, लेकिन अज्ञानी आत्मा का मानना है कि   
वे दोनों एक ही द्रव्य हैं।**

⁕ **गाथा ४४** ⁕

**एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।**

**केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वृच्च॑ति॥ ४४॥**

***ये पूर्वकथित अध्यवसान आदि सभी भाव पुद्‌गलद्रव्य के   
परिणाम से उत्पन्न हुए हैं – ऐसा केवली भगवान ने कहा है; अतः   
उन्हें जीव कैसे कहा जा सकता है ?***

जैसे ठहरे हुए पानी के ऊपर जमी हुई हरी काई के कारण पानी गंदा   
दिखता है। कोई व्यक्ति हरी काई को पानी कैसे कह सकता है ? नीचे का   
पानी शुद्ध एवं निर्मल है। **ऐसे ही आत्मा की पर्याय की मलिनता के   
कारण आत्मा मलिन दिखाई देता है। कोई व्यक्ति मलिन पर्यायों को   
आत्मा कैसे कह सकता है ? आत्मा नित्य शुद्ध एवं निर्मल है।**

⁕ **गाथा ४५** ⁕

**अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेंति।**

**जस्स फल तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स॥ ४५॥**

***जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि आठों प्रकार के सभी कर्म   
पुद्‌गलमय हैं और उनके पकने पर उदय में आनेवाले कर्मों का फल   
दुःख कहा गया है।***

यदि जहर आठ प्रकार के हैं, तो उनमें से प्रत्येक जहर मृत्यु का   
कारण बन सकता है। प्रत्येक व्यक्ति हमेशा जहर की बोतल पर 'जहर'   
लिख कर रखता है और उसके स्वभाव से सावधान रहता है। **ऐसे ही सभी   
प्रकार के कर्म दुःखदायक हैं, प्रत्येक आत्मा को कर्म के स्वभाव   
को समझकर कर्म से मुक्त होने का पुरुषार्थ करना चाहिए।**

⁕ **गाथा ४६** ⁕

**ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।**

**जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा॥ ४६॥**

***‘ये सब अध्यवसानादिभाव जीव हैं' − इसप्रकार जो जिनेन्द्रदेव ने उपदेश दिया है, वह व्यवहारनय दिखाया है।***

जैसे घर में बहुत गंदगी हो, तो हम कहते हैं कि घर 'गंदा' है। **ऐसे ही व्यवहारनय से वर्तमान अशुद्ध पर्याय के कारण आत्मा को अशुद्ध आत्मा जाना जाता है।**

⁕ **गाथा ४७−४८** ⁕

**राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्य आदेसो।**

**हु ववहारेण दू उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया॥ ४७॥**

**एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।**

**जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो॥ ४८ ॥**

***सेना सहित राजा के निकलने पर जो यह कहा जाता है कि 'यह   
राजा निकला', वह व्यवहार से ही कहा जाता है; क्योंकि उस सेना   
में वस्तुतः राजा तो एक ही होता है। इसीप्रकार अध्यवसानादि अन्य   
भावों को 'ये जीव हैं' – इसप्रकार जो सूत्र (आगम) में कहा गया   
है, वह व्यवहार से ही कहा गया है। यदि निश्चय से विचार किया   
जाये तो उनमें जीव तो एक ही है।***

भारत के प्रधान मंत्री ने अमेरिका से कहा, “हम शांति चाहते हैं”।   
तो अमेरिकन समाचार पत्र ऐसा छापते हैं कि 'भारतीय शांति चाहते हैं।   
व्यवहारनय से प्रधान मंत्री समस्त भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यदि स्टीव की आँखें मोर को देखती हैं, तो ऐसा कहा जाता है कि   
'स्टीव ने मोर को देखा। वास्तव में आँखें तो स्टीव के पूरे शरीर का एक   
हिस्सा हैं और वे आँखें शरीर के बिना अपना कार्य नहीं कर सकती।

**ऐसे ही व्यवहारनय से विकारी परभावों को आत्मा कहा जाता   
है। निश्चयनय से आत्मा एवं विकारी परभाव दोनों न्यारे–न्यारे हैं।**

⁕ **गाथा ४९** ⁕

**अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।**

**जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥ ४९॥**

***हे भव्य ! तुम जीव को अरस, अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, अशब्द,   
अनिर्दिष्टसंस्थान, अलिंगग्रहण और चेतना गुणवाला जानो।***

**पाँचों इन्द्रियों के विषय (चमड़ी, जीभ, नाक, आँखें और   
कान) ये सभी पुद्‌गल का स्वभाव हैं। वे जीव में नहीं पाए जाते हैं।   
ज्ञान आत्मा का मुख्य गुण है।**

जैसे शक्कर से भरे थैले को खाली करने के बाद उसे चखने पर जो   
मीठा स्वाद आता है, वह मीठा स्वाद शक्कर का है, थैले का नहीं। यह   
शरीर भी थैले के समान है। आत्मा शक्कर के समान है और ज्ञान मिठास   
के समान है। जैसे शक्कर को थैले से अलग किया जा सकता है, परन्तु   
मिठास को शक्कर से अलग नहीं किया जा सकता। ऐसे ही **आत्मा को   
शरीर से अलग किया जा सकता है, परन्तु ज्ञान को आत्मा से अलग   
नहीं किया जा सकता।**

जैसे देखने के लिए आँखों का माध्यम चश्मा है, ऐसे ही **जानने के   
लिए आत्मा का माध्यम शरीर है। लेकिन शरीर में ज्ञान नहीं है। मौत   
के बाद, शरीर में आत्मा नहीं है और इसलिए शरीर को किसी भी   
चीज का ज्ञान नहीं होता है।**

पानी जिस बर्तन में होता है उसी का आकार ले लेता है। **इसीतरह,   
संसारी आत्मा जिस देह को धारण करता है, उस देह जैसा आकार   
ग्रहण कर लेता है। आत्मा का आकार पाँच इन्द्रियों के द्वारा अनुभव   
में नहीं आ सकता और इसलिए आत्मा को निराकार कहा जाता है।**

⁕ **गाथा ५०–५१–५२–५३–५४–५५** ⁕

**जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो न वि रसो ण वि य फासो।**

**ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं॥ ५०॥**

**जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।**

**णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि॥ ५१॥**

**जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्‌ढया केई।**

**णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि॥ ५२॥**

**जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।**

**णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई॥ ५३॥**

**णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।**

**णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा॥ ५४॥**

**णेव य जीवट्ठाणा न गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।**

**जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा॥ ५५॥**

***जीव के वर्ण नहीं है, गन्ध भी नहीं है, रस और स्पर्श भी नहीं   
है; रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, संस्थान और संहनन भी नहीं है।   
जीव के राग नहीं है, द्वेष नहीं है और मोह भी विद्यमान नहीं है; प्रत्यय   
नहीं है, कर्म भी नहीं है और नोकर्म भी नहीं है। जीव के वर्ग नहीं   
है, वर्गणा नहीं है और कोई स्पर्धक भी नहीं है; अध्यात्मस्थान और***

***अनुभागस्थान भी नहीं हैं। जीव के कोई योगस्थान नहीं है, बंधस्थान   
नहीं है, उदयस्थान नहीं है और कोई मार्गणास्थान भी नहीं है। जीव   
के स्थितिबंधस्थान नहीं है, संक्लेशस्थान भी नहीं है, विशुद्धिस्थान   
भी नहीं है और संयमलब्धिस्थान भी नहीं है। जीव के जीवस्थान   
नहीं है और गुणस्थान भी नहीं है; क्योंकि ये सभी पुद्‌गलद्रव्य के परिणाम हैं।***

**आत्मा पुद्‌गल से अलग होने से उनतीस प्रकार के रागादि   
वर्णादि पौद्गलिक भावों द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता।**

**कभी−कभी ऐसा कहा जाता है कि आत्मा हजारों सूर्य के   
प्रकाश जैसा है। परन्तु वह कथन असत्य है, क्योंकि आत्मा में   
प्रकाश या अंधकार नहीं होता है।**

जैसे कारागृह में हथकड़ी से बँधे कैदी की देखभाल करने वाला   
चौकीदार होता है। आत्मा कैदी है, शरीर कारागृह है, कर्म हथकड़ी है   
और परिवारजन चौकीदार हैं। जब शरीर बीमार होता है, तब परिवारजन   
देखभाल करते हैं, क्योंकि वे नहीं चाहते कि आत्मारूपी कैदी देहरूपी   
कारागृह से निकल जाए। जब एक कैदी को एक कारागृह से दूसरे कारागृह   
लेकर जाते हैं, तब भी वह हथकड़ी से बँधा होता है। **जब आत्मा एक   
शरीर में से दूसरे शरीर में जाता है, तब भी वह कर्मरूपी हथकड़ी   
से बँधा होता है।** जैसे कैदी तो मनुष्य का शरीर है, जो कि हथकड़ी,   
चौकीदार एवं कारागृह से अप्रभावित रहता है। ऐसे ही **कर्म, शरीर,   
परिवारजन के साथ रहकर भी आत्मा सदैव चैतन्य मात्र है। नित्य   
शुद्ध स्वभावी भगवान आत्मा सर्वोत्कृष्ट है।**

जैसे रंग को दिखाने के लिए फिल्म का पर्दा सफ़ेद होता है। ऐसे ही   
**आत्मा सदैव शुद्ध है और अपनी पर्याय की मलिनता को जानता   
है। आत्मा उनतीस प्रकार के रागादि वर्णादि पौद्गलिक भावों को   
जानता है, परन्तु उनसे सदैव अप्रभावित रहता है।**

जैसे फिल्म थियेटर के मालिक की रुचि पर्दे में है, जबकि दर्शकों   
की रुचि पर्दे में नहीं, बल्कि पर्दे पर प्रतिबिम्बित रंगीन दृश्यों में है। **ऐसे   
ही ज्ञानी मालिक की भाँति हैं, जो अपनी शुद्धता में तन्मय हैं और   
अज्ञानी दर्शक की भाँति हैं, जो उनतीस प्रकार के रागादि वर्णादि   
पौद्गलिक भावों में तन्मय हैं।**

जैसे एक कमरे में दस बल्ब जलते हो और यदि एक के बाद एक   
बल्ब को बंद कर दिया जाए, तो धीरे−धीरे प्रकाश कम कम होने लगता है   
और अंत में अँधेरा छा जाता है। प्रत्येक बल्ब का प्रकाश स्वतंत्र है। **जब   
दो पुद्‌गल द्रव्य भी एक−दूसरे में मिल नहीं सकते हैं, तब आत्मा   
पुद्‌गल में कैसे मिल सकता है ? ज्ञानी यह अनुभव करते हैं कि आत्मा   
नित्य शुद्ध है, सभी परद्रव्यों से भिन्न है एवं अपनी पर्यायों से अन्य है।**

⁕ **गाथा ५६** ⁕

**ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।**

**गुणठाणंता भावा ण दु केई मिच्छयणयस्स॥ ५६॥**

***ये वर्णादि से लेकर गुणस्थान पर्यन्त जो भाव कहे हैं, वे   
व्यवहारनय से तो जीव के हैं; किन्तु निश्चयनय से उनमें से कोई भी   
जीव के नहीं हैं।***

जैसे विश्व के नक्शे पर अमेरिका की दृष्टि से भारत पूर्व में है एवं   
सिंगापुर की दृष्टि से भारत पश्चिम में है। ऐसे ही **व्यवहारनय एवं निश्चयनय   
भिन्न–भिन्न हैं, फिर भी दोनों नय अपने−अपने दृष्टिकोण से सत्य हैं।**

⁕ **गाथा ५७** ⁕

**एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।**

**ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा॥ ५७॥**

***यद्यपि इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का दूध और पानी की   
तरह एकक्षेत्रावगाहरूप संयोग सम्बन्ध है; तथापि वे जीव के नहीं हैं;   
क्योंकि जीव उनसे उपयोग गुण से अधिक है – ऐसा जानना चाहिए।***

जैसे हम दूध और पानी के मिश्रण को उबाल लें, तो पानी वाष्पीभूत   
हो सकता है। वे दोनों मिश्रण के काल में भी अलग−अलग थे। ऐसे   
ही **उनतीस प्रकार के रागादि वर्णादि पौद्गलिक भाव आत्मा के   
निर्विकल्प ध्यान से दूर किये जा सकते हैं। वास्तव में उनतीस प्रकार   
के रागादि वर्णादि पौद्गलिक भाव और आत्मा सदैव न्यारे–न्यारे हैं।**

⁕ **गाथा ५८−५९−६०** ⁕

**पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भगंति ववहारी।**

**मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई॥ ५८॥**

**तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।**

**जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ॥ ५९ ॥**

**गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।**

**सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति॥ ६०॥**

***जिसप्रकार मार्ग में जाते हुए व्यक्ति को लुटता हुआ देखकर   
व्यवहारीजन ऐसा कहते हैं कि यह मार्ग लुटता है; किन्तु परमार्थ   
से विचार किया जाये तो कोई मार्ग तो लुटता नहीं है, अपितु मार्ग   
में चलता हुआ पथिक ही लुटता है। इसीप्रकार जीव में कर्मों और   
नोकर्मों का वर्ण देखकर जिनेन्द्र भगवान व्यवहार से ऐसा कहते हैं   
कि यह वर्ण जीव का है। जिसप्रकार वर्ण के बारे में कहा गया है;   
उसीप्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, देह, संस्थान आदि के बारे में भी   
समझना चाहिए कि ये सब भाव भी व्यवहार से ही जीव के हैं – ऐसा   
निश्चयनय के देखनेवाले या निश्चयनय के जानकार कहते हैं।***

यदि मार्ग के दोनों तरफ खूबसूरत पेड़ और फूल हों, तो व्यवहार   
से मार्ग को 'सुंदर' कहा जाता है। वास्तव में मार्ग स्वयं सुंदर नहीं है।   
ऐसे ही **व्यवहारनय से पुद्‌गल के भावों द्वारा आत्मा को जाना जाता   
है। वास्तव में आत्मा में कोई भी पौद्गलिक भाव नहीं है और वह   
पौद्गलिक भावों से सर्वथा भिन्न है।**

सामान्यतया ऐसा कहा जाता है कि विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को   
उपाधियाँ देता है। वास्तव में विश्वविद्यालय विद्यार्थियों से अलग है एवं   
विद्यार्थी स्वयं की मेहनत से उपाधियाँ पाते हैं। ऐसे ही **व्यवहारनय से   
आत्मा और पुद्‌गल एक जानने में आते हैं, परन्तु निश्चयनय से   
आत्मा और पुद्‌गल भिन्न–भिन्न हैं।**

⁕ **गाथा ६१** ⁕

**तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।**

**संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई॥ ६१॥**

***वर्णादिभाव संसारी जीवों के ही होते हैं, मुक्त जीवों के नहीं।***

अग्नि सदैव उष्णता के साथ अभेद है, परन्तु अग्नि में से हमेशा धुआँ   
उत्पन्न नहीं हो सकता। **आत्मा सदैव ज्ञान के साथ अभेद है, परन्तु   
मुक्त आत्माओं में कर्मोदय का मल नहीं पाया जाता है। व्यवहारनय   
से आत्मा और शरीर एक कहे जाते हैं, बस इसलिए आत्मा को   
वर्णादिरूप कहा है। मोक्ष में आत्मा को शरीर नहीं होता है, अतः   
मोक्ष में आत्मा को वर्णादिरूप नहीं कहा है।**

⁕ **गाथा ६२** ⁕

**जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।**

**जीवस्साजीवरस य णत्थि विसेसो दु दे कोई॥ ६२॥**

***यदि तुम ऐसा मानोगे कि ये वर्णादिभाव जीव ही हैं तो तुम्हारे***

***मत में जीव और अजीव में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा।***

जैसे भूसी के आवरण में चावल का दाना ढँका होता है, ऐसे ही शरीर   
के आवरण में आत्मा ढँका हुआ है। अज्ञानी अन्दर के चावल को नहीं   
देखता है और भूसी को ही चावल मान लेता है, ठीक इसीप्रकार **अज्ञानी   
अंतर में आत्मा को देखता नहीं है और शरीर को ही आत्मा मानता है।**

⁕ **गाथा ६३−६४** ⁕

**अह संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।**

**तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा॥ ६३॥**

**एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।**

**णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो॥ ६४ ॥**

***यदि तुम ऐसा मानो कि संसारी जीव के ही वर्णादिक होते हैं;   
इसकारण संसारी जीव तो रूपी हो ही गए, किन्तु रूपित्व लक्षण तो   
पुद्‌गलद्रव्य का है। अतः हे मूढ़मति ! पुद्‌गलद्रव्य ही जीव कहलाया।   
अकेले संसारावस्था में ही नहीं, अपितु निर्वाण प्राप्त होने पर भी   
पुद्‌गल ही जीवत्व को प्राप्त हुआ।***

मुसाफ़िर स्टेशन पर उतरते हैं; कुछ देर इंतज़ार करते हैं और फिर   
चले जाते हैं। शरीर के परमाणु भी मुसाफ़िर और आत्मा स्टेशन की भाँति   
है। जब मुसाफ़िर चले जाते हैं, तब स्टेशन उन्हें जबरदस्ती रोक नहीं   
सकता। ठीक इसीप्रकार, मृत्यु के समय आत्मा शरीर के परमाणुओं को   
अपने साथ ठहराने के लिए रोक नहीं सकता। यदि अधिक काल के लिए   
मुसाफ़िर स्टेशन पर रहे, तो मोह माया अधिक हो जाती है। ऐसे ही,   
**आत्मा शरीर में तन्मय हो जाता है। जितना आयुष्य अधिक होता है,   
उतना ही आत्मा को शरीर में मोह−माया अधिक हो जाती है, वही   
जीवन के अंत में अधिक दुःख का कारण बनता है।**

**चैतन्य स्वभावी आत्मा और शरीरादि जड़ द्रव्य दोनों ही स्वतंत्र हैं।**

⁕ **गाथा ६५−६६** ⁕

**एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इन्दिया जीवा।**

**बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स॥ ६५॥**

**एदाहिं य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं।**

**पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो॥ ६६॥**

***एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, बादर,   
सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त – ये नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं। इन   
पुद्‌गलमयी नामकर्म की प्रकृतियों के कारणरूप होकर रचित   
जीवस्थानों को जीव कैसे कहा जा सकता है ?***

जैसे स्टील, पीतल, काँच आदि घन पात्र में प्रवाही पानी, प्रवाही   
पानी ही रहता है। ऐसे ही **विभिन्न प्रकार के शरीरों में आत्मा, आत्मा   
ही रहता है। हमें शरीर में भेद−भाव नहीं रखना चाहिए, क्योंकि   
प्रत्येक शरीर में आत्मा समान है।** जो प्यासा है, वह पानी को देखता   
है, पात्र को नहीं। ऐसे ही **जो जिज्ञासु है, वह आत्मा को देखता है,   
शरीर को नहीं।**

⁕ **गाथा ६७** ⁕

**पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहमा बादरा य जे चेव।**

**देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता॥ ६७॥**

***शास्त्रों में देह के पर्याप्तक, अपर्याप्तक, सूक्ष्म, बादर आदि   
जितने भी नाम जीवरूप में दिये गये हैं; वे सभी व्यवहारनय से ही   
दिये गये हैं।***

तेल के साथ एक स्टील के जार को 'तेल के जार' के रूप में जाना   
जाता है। वास्तव में जार स्टील से बना है। **व्यवहारनय से जीवंत आत्मा**

**के साथ जड़ शरीर को जीवंत शरीर के रूप में जाना जाता है। वास्तव   
में शरीर परमाणुओं का पिंड है और आत्मा उससे भिन्न है।**

⁕ **गाथा ६८** ⁕

**मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।**

**ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता॥ ६८॥**

***मोहकर्म के उदय से होनेवाले गुणस्थान सदा ही अचेतन हैं –   
ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है; अतः वे जीव कैसे हो सकते हैं ?***

जैसे सीढ़ी पर बैठा व्यक्ति किसी भी सीढ़ी पर हो सकता है। परन्तु   
व्यक्ति जीवंत है और सीढ़ी जड़ है। ऐसे ही **जीव किसी भी गुणस्थान   
में हो सकता है। परन्तु गुणस्थान कभी जीव नहीं हो सकते, क्योंकि   
गुणस्थान त्रिकाल जड़ हैं।**

जैसे सम्राट और निर्धन को धन−वैभव के आधार पर विभाजित   
किया जाता है। यदि उन्हें धन−वैभव से न्यारा देखा जाए तो दोनों साधारण   
मनुष्य हैं। ऐसे ही **जीवों को शरीर एवं कर्मों के आधार पर विभाजित   
किया जाता है, यदि उन्हें शरीर एवं कर्मों से न्यारा देखा जाए तो सभी   
जीव समान हैं।**

**कर्ताकर्म अधिकार**

⁕ **गाथा ६९−७०** ⁕

**जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोहं पि।**

**अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो॥ ६९॥**

**कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदी।**

**जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं॥ ७०॥**

***जबतक यह जीव आत्मा और आस्रवों – इन दोनों के भेद   
और अन्तर को नहीं जानता है, तबतक अज्ञानी रहता हुआ क्रोधादि   
आस्रवों में प्रवर्तता है। क्रोधादि में प्रवर्तमान उस जीव के कर्म का   
संचय होता है। जीव के कर्मों का बंध वास्तव में इसप्रकार होता है   
– ऐसा सर्वदर्शी भगवानों ने कहा है।***

जब किसी को सर्दी होती है, तो उसके शरीर में नाक में कफ जम   
जाता है, परन्तु वह मलिन पदार्थ है और शरीर से अलग है। इसीतरह,   
**क्रोधादि विकारी भाव आत्मा में उत्पन्न होते हैं, लेकिन वे मलिन   
हैं और आत्मा से अलग हैं।** यदि कोई व्यक्ति कफ को शरीर का अंग   
मान ले, तो वह कभी−भी उसे दूर नहीं करेगा। ऐसे ही **यदि कोई जीव   
क्रोधादि विकारी भावों को आत्मा का स्वभाव मान ले, तो वह   
कभी–भी उसे दूर नहीं करेगा।**

जैसे पानी का स्वभाव शीतलता है। परन्तु जब वह आग के संपर्क   
में आता है, तब वह अस्थायी रूप से गरम होता है। ऐसे ही **आत्मा का   
स्वभाव विकारी भावों से न्यारा रहना है। परन्तु जब वह कर्म के योग   
में रहता है, तब उसमें क्षणिक विकारी भाव होते हैं। फिर भी आत्मा   
और विकारी भाव न्यारे–न्यारे हैं।**

⁕ **गाथा ७१** ⁕

**जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव।**

**णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से॥ ७१॥**

***जब यह जीव आत्मा और आस्रवों का अन्तर और भेद जानता   
है, तब उसे बंध नहीं होता।***

**समयसार में इस बात पर जोर दिया है कि आत्मा और आस्रव   
अलग–अलग हैं, जबकि अन्य शास्त्रों में आस्रव के 57 भेदों पर   
जोर दिया है।**

लाल शर्बत से भरा गिलास लाल दिखाई देता है, परन्तु गिलास   
पारदर्शक ही रहता है, वह लाल नहीं हो जाता। **आत्मा में क्रोधादि   
विकारी भाव होने से आत्मा क्रोधी एवं अशुद्ध दिखाई देता है,   
परन्तु आत्मा क्रोधादि विकारी भावों से न्यारा होने से शुद्ध है।** यदि   
उसी गिलास को खाली करके उसमें हरा शर्बत भरा जाए, तो गिलास हरा   
दिखाई देता है, क्योंकि गिलास लाल नहीं हो गया था। ऐसे ही **जब क्रोध   
चला जाता है और मान उत्पन्न होता है, तब आत्मा को मान होने का   
और क्रोध जाने का अनुभव होता है। वह इस बात को बताता है कि   
आत्मा क्रोध, मान आदि विकारी भावों से न्यारा है।**

⁕ **गाथा ७२** ⁕

**णादून आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।**

**दुक्खस्स कारणं ति य तदो नियत्तिं कुणदि जीवो॥ ७२॥**

***आस्रवों की अशुचिता एवं विपरीतता जानकर और वे दुःख के   
कारण हैं − ऐसा जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।***

एक व्यक्ति को गाँव के लोगों की समस्याओं का हल करने का मौका   
दिया गया। वह एक पत्थर पर बैठा था और उसने अचानक दर्द महसूस   
किया और वह असह्य वेदना के कारण वहाँ से उठकर चला गया। उसने   
सोचा कि कठिन समस्याओं का समाधान करने की क्षमता नहीं होने के   
कारण उसे दर्द हो रहा है। वास्तव में लोगों की समस्या दर्द का कारण नहीं   
थी, बल्कि वह जिस पत्थर बैठा था, उसकी धार टूटी हुई थी और उसमें   
से एक बिच्छू उसे काट रहा था। ऐसे ही **जीव के दुःख का वास्तविक   
कारण आस्रव हैं, अनुकूल एवं प्रतिकूल संयोग नहीं। जब तक जीव   
यह नहीं जानता, तब तक वह दुःखी रहता है।**

⁕ **गाथा ७३** ⁕

**अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।**

**तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं गेमि॥ ७३॥**

***ज्ञानी विचारता है कि मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ, निर्मम हूँ   
और ज्ञानदर्शन से पूर्ण हूँ। इसप्रकार के आत्मस्वभाव में स्थित रहता   
हुआ, उसी में लीन होता हुआ मैं इन सभी क्रोधादि आस्रवभावों का   
क्षय करता हूँ।***

जैसे हाथ से पकड़कर सोने में से अशुद्धियों को दूर नहीं किया जा   
सकता, लेकिन उसे बहुत अधिक तापमान पर गर्म करके दूर किया जा   
सकता है। **ऐसे ही कर्मों के आस्रव को कर्मों का ध्यान करके रोका   
नहीं जा सकता, लेकिन ज्ञायकभाव के निर्विकल्प ध्यान से उसे   
रोका जा सकता है।**

⁕ **गाथा ७४** ⁕

**जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य।**

**दुक्खा दुक्खफल त्ति य णादूण निवत्तदे तेहिं॥ ७४॥**

***ये आस्रवभाव जीव के साथ निबद्ध हैं, अध्रुव हैं, अनित्य हैं,   
अशरण हैं, दुःखरूप हैं और दुःख के रूप में फलते हैं, दुःख के   
कारण हैं – ऐसा जानकर ज्ञानी उनसे निवृत्त होता है।***

जैसे पेड़ की छाया सूर्य के अनुसार बदलती रहती है। परन्तु जब पेड़   
बूढ़ा हो जाता है, तो नीचे गिर जाता है और फिर कोई छाया नहीं रहती।   
**ऐसे ही जीव के भाव भी क्षणिक हैं और प्रतिसमय पलटते रहते हैं।   
जिस व्यक्ति के प्रति भाव उत्पन्न होते हैं, वह व्यक्ति ही जब नहीं   
बचता, तब फिर उसके प्रति होने वाला भाव भी नहीं बचता।**

⁕ **गाथा ७५** ⁕

**कम्मस्स य परिणामं गोकम्मस्स य तहेव परिणामं।**

**ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी॥ ७५॥**

***जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को तथा नोकर्म के परिणाम   
को करता नहीं है, मात्र जानता ही है; वह ज्ञानी है।***

जैसे कोई मालिक अपने नौकर को जानता है और उसका निरीक्षण   
करता है। मालिक अपने नौकर जितना अधिक काम नहीं करके भी नौकर   
से अधिक धन कमाता है। **ऐसे ही ज्ञानी कर्मों के ज्ञाता दृष्टा रहते हैं।   
वे ऐसा नहीं मानते हैं कि वे कर्मों के कर्ता हैं, अतः वे नित्य सुख पाते   
हैं। अज्ञानी कर्मों का ज्ञाता–दृष्टा नहीं रहता है। वह ऐसा मानता है   
कि वह कर्मों का कर्ता है, अतः वह नित्य सुख नहीं पाता है।**

⁕ **गाथा ७६** ⁕

**णविपरिणमदि णगिण्हदि उप्पज्जदि णपरदव्वपज्जाए।**

**णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं॥ ७६॥**

***ज्ञानी अनेकप्रकार के पुद्‌गल कर्म को जानता हुआ भी निश्चय   
से परद्रव्य की पर्यायरूप परिणमित नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता   
और उसरूप उत्पन्न नहीं होता।***

जैसे आँखें समुद्र को देखती हैं, लेकिन शरीर को नहीं छोड़ती हैं।   
वे समुद्ररूप परिणमित नहीं होती, समुद्र को ग्रहण नहीं करती एवं समुद्ररूप   
उत्पन्न नहीं होती। **ऐसे ही आत्मा परद्रव्य की पर्यायों को जानता है,   
परन्तु वह इन पर्यायोंरूप परिणमित नहीं होता, इन पर्यायों को ग्रहण   
नहीं करता एवं इन पर्यायोंरूप उत्पन्न नहीं होता।**

⁕ **गाथा ७७** ⁕

**ण वि परिणमदि न गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।**

**णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं॥ ७७॥**

***ज्ञानी अनेकप्रकार के अपने परिणामों को जानता हुआ भी   
निश्चय से परद्रव्य की पर्यायरूप परिणमित नहीं होता; उसे ग्रहण   
नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता।***

जैसे हवा के निमित्त से समुद्र की लहरें उठती हैं, परन्तु सागर के   
पानी के शीतल स्वभाव को बाधक नहीं बनती। **ऐसे ही आत्मा पानी   
की भाँति है, और शुभाशुभभाव आत्मा के ज्ञान स्वभाव को बाधा   
नहीं पहुँचाते।**

जैसे सुनार जानता है कि वह सोने की अंगूठी बना रहा है, परन्तु   
वह स्वयं सोनेरूप परिणमित नहीं होता, सोने को ग्रहण नहीं करता या   
सोनेरूप उत्पन्न नहीं होता। **ऐसे ही ज्ञानी अपने अनेक प्रकार के भावों   
को जानते हैं, परन्तु वे उनरूप परिणमित नहीं होते, उन्हें ग्रहण नहीं   
करते, उनरूप उत्पन्न नहीं होते।**

⁕ **गाथा ७८** ⁕

**ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि न परदव्वपज्जाए।**

**णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मप्फलमणंतं॥ ७८॥**

***ज्ञानी पुद्‌गल कर्म के अनन्तफल को जानते हुए भी परमार्थ से   
परद्रव्य की पर्यायरूप परिणमित नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता   
और उसरूप उत्पन्न नहीं होता।***

जैसे बुलेटप्रूफ कार में सफर कर रहा सेठ जानता है कि एक हत्यारे   
की बंदूक से निकली जानलेवा गोली उसे नुकसान नहीं पहुँचाएगी। **ऐसे ही   
ज्ञानी जानते हैं कि कर्म का फल अनन्त है। हालाँकि, वे आत्मा को   
प्रभावित नहीं करते, क्योंकि पुद्‌गल कभी−भी आत्मा के स्वभाव   
को प्रभावित नहीं कर सकता।**

⁕ **गाथा ७९** ⁕

**ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।**

**पोग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सएहिं भावेहिं॥ ७९॥**

***इसीप्रकार पुद्‌गल द्रव्य भी परद्रव्य की पर्यायरूप परिणमित   
नहीं होता, उसे ग्रहण नहीं करता और उसरूप उत्पन्न नहीं होता;   
क्योंकि वह भी अपने ही भावों से परिणमित होता है।***

जैसे एक ही दीवार से लगे दो फ्लैट में रहने वाले दो व्यक्ति एक–  
दूसरे के फ्लैट में प्रवेश या परिवर्तन नहीं कर सकते। **ऐसे ही दो द्रव्यों   
की स्वतंत्रता की दीवार यह कहती है कि एक द्रव्य अन्य द्रव्य की   
पर्यायोंरूप परिणमित नहीं हो सकता, उन्हें ग्रहण नहीं कर सकता या   
उनरूप उत्पन्न नहीं हो सकता।**

⁕ **गाथा ८०–८१–८२** ⁕

**जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।**

**पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥ ८०॥**

**न विकुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।**

**अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि॥ ८१॥**

**एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।**

**पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥ ८२॥**

***जीव के परिणामों का निमित्त पाकर पुद्‌गल (कार्माण वर्गणाएँ)   
कर्मरूप परिणमित होते हैं तथा जीव भी पौद्गलिककर्मों के निमित्त   
से परिणमन करता है। यद्यपि जीव कर्म के गुणों को नहीं करता और   
कर्म जीव के गुणों को नहीं करता; तथापि परस्पर निमित्त से दोनों के   
परिणाम होते हैं − ऐसा जानो। इसकारण आत्मा अपने भावों का कर्ता है,   
परन्तु पौद्गलिककर्मों के द्वारा किये गये समस्त भावों का कर्ता नहीं है।***

जैसे प्राणी संग्रहालय में सिंह और हिरण के बीच एक मजबूत अटूट   
पारदर्शी काँच होता है। शेर को ऐसा लगता है कि वह हिरण को खा जाएगा   
और हिरण सिंह द्वारा खाये जाने से डरता है। हालाँकि इनमें से कुछ भी   
संभव नहीं है। **दो द्रव्यों की स्वतंत्रता के सिद्धांत की वज्र की दीवार   
की तुलना काँच के साथ करते हुए कहते हैं कि एक द्रव्य अन्य द्रव्य   
की पर्यायोंरूप परिणमित नहीं हो सकता, उन्हें ग्रहण नहीं कर सकता   
या उनरूप उत्पन्न नहीं हो सकता।**

आत्मा और शरीर एकक्षेत्रावगाही हैं। जब आत्मा गति करता है,   
तब आत्मा के साथ शरीर भी गति करता है और जब शरीर गति करता है,   
तब शरीर के साथ आत्मा भी गति करता है। **शरीर की गति में आत्मा   
के भाव निमित्त हैं, आत्मा की गति में शरीर की गति निमित्त है। फिर   
भी वे एक−दूसरे के कर्ता नहीं हैं और स्वतंत्र सत्ता स्वरूप द्रव्य हैं।**

जैसे कंपनी के मालिक और कर्मचारी एक−दूसरे के लिए काम करते   
हैं, धन कमाने के लिए दोनों ही एक−दूसरे के लिए निमित्त हैं। वास्तव   
में दोनों अपनी–अपनी योग्यतानुसार मेहनत करते हैं। **ऐसे ही कर्म और   
आत्मा एक−दूसरे के लिए निमित्त कारण हैं। लेकिन वास्तव में,   
दोनों स्वतंत्र द्रव्य हैं और दोनों की भवितव्यता अपनी–अपनी है।**

⁕ **गाथा ८३** ⁕

**णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।**

**वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं॥ ८३॥**

***निश्चयनय का ऐसा कहना है कि यह आत्मा अपने को ही   
करता है और अपने को ही भोगता है – हे शिष्य ! ऐसा तू जान।***

जैसे कोई व्यक्ति किसी सुन्दर स्त्री के प्रति आकर्षित होता है, परन्तु   
उस स्त्री से भी अधिक सुन्दर अपनी बहन के प्रति आकर्षित नहीं होता।   
आकर्षण जीव की स्वयं की कमजोरी है, न कि सौन्दर्य। **ऐसे ही आत्मा   
स्वयं ही स्वयं का कर्ता एवं भोक्ता है।**

जैसे कोई व्यक्ति अपने घर में फर्नीचर को व्यवस्थित कर सकता   
है, लेकिन किसी पराये के घर में फर्नीचर को व्यवस्थित नहीं कर सकता।   
**उसी प्रकार आत्मा स्वयं का कर्ता तो है, परन्तु परद्रव्य का कर्ता नहीं   
हो सकता।**

⁕ **गाथा ८४** ⁕

**ववहारस्स दु आदा पोग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।**

**तं चेव पुणो वेयइ पोग्गलकम्मं अणेयविहं॥ ८४॥**

***व्यवहारनय का यह मत है कि आत्मा अनेकप्रकार के पुद्‌गलकर्मों   
को करता है और उन्हीं अनेकप्रकार के पुद्‌गलकर्मों को भोगता है।***

जैसे कुम्हार मिट्टी में से घड़ा बनाता है, लेकिन हम कहते हैं कि   
कुम्हार घड़ा बनाता है, मिट्टी नहीं। **ऐसे ही आत्मा पाप एवं पुण्य कर्मों   
को बाँधता है और उनके फल को भोगता है।**

⁕ **गाथा ८५** ⁕

**जदि पोग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।**

**दोकिरियावदिरितो पसज्जदे सो जिणावमदं॥ ८५॥**

***यदि आत्मा पुद्‌गलकर्म को करे और उसी को भोगे तो वह   
आत्मा अपनी और पुद्‌गलकर्म की दो क्रियाओं से अभिन्न ठहरे; जो   
कि जिनदेव को सम्मत नहीं है।***

यदि कोई धनवान व्यक्ति गाड़ी खरीदना चाहता हो, तो उसे किसी   
अन्य धनवान व्यक्ति से आर्थिक सहाय लेने की ज़रूरत नहीं होती, क्योंकि   
उसके पास स्वयं ही गाड़ी खरीदने की क्षमता है। **आत्मा दो क्रियाओं   
का कर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि तब वह अपनी ही क्रियाओं का   
कर्ता नहीं रह सकता। कार्माण वर्गणा को आत्मा से बँधने के लिए   
आत्मा की सहाय लेने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वह स्वयं आत्मा   
से बँधने के लिए शक्तिशाली है। दोनों अपने–अपने स्वभाव अनुसार   
अपना–अपना कार्य स्वतंत्ररूप से करते हैं।**

⁕ **गाथा ८६** ⁕

**जम्हा दु अत्तभावं पोग्गलभावं च दो वि कुव्वंति।**

**तेण दुमिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुति॥ ८६॥**

***क्योंकि वे ऐसा मानते हैं कि आत्मा के भाव और पुद्‌गल के भाव   
– दोनों को आत्मा करता है; इसीलिए वे द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टी हैं।***

जैसे कुम्हार मिट्टी का घड़ा बनाता है। चूँकि घड़े का कर्ता मिट्टी है,   
कुम्हार नहीं। क्योंकि कुम्हार तो कुम्हार ही रहता है, परन्तु मिट्टी स्वयं   
घड़ेरूप परिणमित होती है। **ऐसे ही आत्मा कर्मों को बाँधता है। चूँकि   
कर्मबंधन का कर्ता कार्माण वर्गणा है, आत्मा नहीं। क्योंकि आत्मा   
स्वयं कर्मरूप परिणमित नहीं होता, बल्कि कार्माण वर्गणा कर्मरूप   
परिणमित होती है।**

जैसे कुम्हार दो काम करता है − सोचता है और मिट्टी का घड़ा   
बनाता है। कुम्हार घड़े का कर्ता नहीं है, बल्कि घड़ा बनने में निमित्त   
कारण है। **ऐसे ही आत्मा दो कार्य नहीं कर सकता – भावकर्म   
एवं द्रव्यकर्म। आत्मा मात्र निमित्त कारण है।**

⁕ **गाथा ८७** ⁕

**मिच्छत्तं पुणं दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।**

**अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा॥ ८७॥**

***जीवमिथ्यात्व और अजीवमिथ्यात्व के भेद से मिथ्यात्व दो   
प्रकार का है। इसीप्रकार अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोधादि   
भी जीव और अजीव के भेद से दो–दो प्रकार के होते हैं।***

भावकर्म कम्प्यूटर के सॉफ्टवेयर की तरह और द्रव्यकर्म हार्डवेयर की   
तरह हैं। कम्प्यूटर को ठीक से काम करने के लिए सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर   
दोनों की आवश्यकता होती है। **इसीतरह, भावकर्म एवं द्रव्यकर्म दोनों   
ही संसार परिभ्रमण हेतु आवश्यक हैं।**

⁕ **गाथा ८८** ⁕

**पोग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।**

**उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छं च जीवो दु॥ ८८॥**

***जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान अजीव हैं; वे तो   
पौद्गलिक कर्म हैं और जो अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व जीव   
हैं, वे उपयोग हैं।***

**बंध के पाँच प्रकार के कारण हैं : मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद,   
कषाय और योग। उन सभी की तारतम्यता अलग–अलग होती हैं।**

जीव पाँच प्रकार के होते हैं। उनमें सबसे पहले पंचेन्द्रिय जीव की   
हिंसा से छूटना चाहिए। फिर चतुरिन्द्रिय जीव की, फिर त्रिइन्द्रिय जीव की,   
फिर द्विइन्द्रिय जीव की और अंत में एकेन्द्रिय जीव की हिंसा से विरक्त   
होना चाहिए। **कर्मबंधन का सबसे अधिक खतरनाक कारण मिथ्यात्व है।   
यदि मिथ्यात्व दूर हों, तो अन्य चार कारण स्वयमेव दूर हो जाते हैं।**

⁕ **गाथा ८९** ⁕

**उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।**

**मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो॥ ८९॥**

***मोहयुक्त उपयोग के मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव – ये   
तीन परिणाम अनादि से ही जानना चाहिए।***

यदि जहर की एक छोटी−सी बूंद दूध में डाल दी जाए, तो सारा   
दूध जहरीला हो जाता है। **उसीतरह आत्मा का स्वभाव शुद्ध होने पर   
भी पुद्‌गल के प्रति मोह, राग एवं द्वेष के कारण अशुद्ध हो सकता   
है। तब श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र ये तीनों मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं   
मिथ्याचारित्र रूप हो जाते हैं।**

जब कोई पुरुष प्रथम बच्चे को जन्म देता है, तब उस पिता की उम्र   
बच्चे की उम्र जितनी होती है, क्योंकि जब बच्चा जन्म लेता है, तभी वह   
पुरुष पिता होता है। **आत्मा अनादि काल से है एवं कर्म बाद में जन्मे   
हैं, ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि आत्मा कर्मों के बिना तो मुक्त होता**

**है। और कर्म आत्मा से पहले थे, यह भी संभव नहीं है। क्योंकि कर्म   
आत्मा के बिना हो नहीं सकते। अतः आत्मा एवं कर्मों का बंधन   
अनादिकाल से है।**

⁕ **गाथा ९०** ⁕

**एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।**

**जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता॥ ९०॥**

***यद्यपि आत्मा का उपयोग शुद्ध और निरंजन भाव है; तथापि   
तीन प्रकार का होता हुआ वह उपयोग जिस भाव को स्वयं करता है,   
उस भाव का वह कर्ता होता है।***

जैसे एक व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार व्यापारी, चोर और   
हत्यारे के रूप में जाना जाता है, चूँकि व्यक्ति तो एक है। **ऐसे ही आत्मा   
एक है, फिर भी वह अपने श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र स्वभाव के   
अनुसार मानने वाला, जानने वाला और चारित्र पालन करने वाला   
जाना जाता है।**

⁕ **गाथा ९१** ⁕

**जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।**

**कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं॥ ९१॥**

***आत्मा जिस भाव को करता है, उसका वह कर्ता होता है। उसके   
कर्ता होने पर पुद्‌गलद्रव्य अपने आप कर्मरूप परिणमित होता है।***

जैसे कोई व्यक्ति अपने अतिथि को अंतर के भावों से अपने घर बुलाता   
है, तब मेहमान पैरों से चलकर उनके घर आते हैं। मेजबान के भाव निमित्त   
कारण है एवं मेजबान के घर तक पहुँचने के लिए मेहमान के पैर उपादान   
कारण हैं। मेजबान यदि मेहमान पर ध्यान ही न दें, तो मेहमान चले जाते हैं।

**ऐसे ही आत्मा के विकारीभाव मेजबान के आमंत्रण की तरह   
हैं और कर्मों का आस्रव मेहमान की तरह है। कर्म आकर आत्मा को   
बाँधते हैं। आत्मा को कर्मबंधन हेतु आत्मा के विकारीभाव निमित्त   
कारण हैं और कार्माण वर्गणा उपादान कारण है। मात्र कार्माण   
वर्गणा में ही आत्मा के साथ कर्मरूप बँधने की शक्ति होती है। यदि   
आत्मा कर्मों की ओर न देखे और अपने चैतन्य स्वरूप को ही देखे,   
तो कर्म आत्मा को छोड़कर चले जाते हैं।**

⁕ **गाथा ९२** ⁕

**परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो।**

**अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि॥ ९२॥**

***जो पर को अपनेरूप करता है, अपने को भी पररूप करता है;   
वह अज्ञानी जीव कर्मों का कर्ता होता है।***

यदि कोई व्यक्ति अज्ञानी के देह की तारीफ़ करता हो, तो अज्ञानी   
मानता है कि कोई उसकी तारीफ़ कर रहा है। क्योंकि वह ऐसा मानता है कि   
वह शरीर ही है। यदि कोई व्यक्ति आत्मा की अनन्त शक्तियों के गुणगान   
गाता हो, तो अज्ञानी ऐसा मानता है कि किसी पराये की प्रशंसा हो रही है।

अज्ञानी का स्वभाव पर से मिलना−जुलना है। जैसे दूसरों के घर   
जाना और अपने घर दूसरों को बुलाना। **अज्ञानी परद्रव्यों के साथ   
मिलना चाहता है, जो संभव ही नहीं है।**

⁕ **गाथा ९३** ⁕

**परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।**

**सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि॥ ९३॥**

***जो पर को अपनेरूप नहीं करता और अपने को भी पररूप नहीं   
करता, वह ज्ञानी जीव कर्मों का कर्ता नहीं होता, अकर्ता ही रहता है।***

जैसे किसी राजनेता को पुलिस ने सुरक्षा प्रदान करने का प्रस्ताव   
भेजा, लेकिन उसने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उनका मानना था   
कि उनकी मृत्यु किसी विशेष समय पर निश्चित है और उसे वह बदल नहीं   
सकता। फिर सुरक्षा का कोई प्रयोजन नहीं है। **ऐसे ही ज्ञानी मानते हैं कि   
सभी पर्यायें क्रमबद्ध हैं, अतः वह किसी भी पर्याय का कर्ता स्वयं   
को नहीं मानते हैं।**

⁕ **गाथा ९४** ⁕

**तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोऽहं।**

**कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स॥ ९४॥**

***यह तीनप्रकार का उपयोग जब क्रोधादि में 'मैं क्रोध हूँ' –   
इसप्रकार का आत्मविकल्प करता है, अपनेपन का विकल्प करता   
है; तब आत्मा उस उपयोगरूप अपने भाव का कर्ता होता है।***

**आत्मा का उपयोग तीन प्रकार का होता है: मानना, जानना   
और 'क्रोध' करना।**

जैसे टीवी पर दिखाए जाने वाले चलते−फिरते दृश्य या वस्तुओं का   
मालिक टीवी देखने वाला व्यक्ति नहीं हैं। वह तो सिर्फ टीवी का मालिक   
है। **ऐसे ही आत्मा में उत्पन्न होने वाले 'मैं क्रोध हूँ' ऐसे अशुद्ध भावों का   
स्वामी आत्मा नहीं है। आत्मा अपने शुद्ध ज्ञान स्वभाव का ही स्वामी है।**

⁕ **गाथा ९५** ⁕

**तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी।**

**कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स॥ ९५॥**

***इसीप्रकार यह तीनप्रकार का उपयोग जब धर्मास्तिकाय आदि   
में 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' – इसप्रकार का आत्मविकल्प करता है,   
अपनेपन का विकल्प करता है; तब आत्मा उस उपयोगरूप अपने   
भाव का कर्ता होता है।***

जैसे घर सजाने में माहिर व्यक्ति सुझाव देता है कि किसी विशेष   
दीवार पर खिड़की लगाना चाहिए। यदि उस खिड़की से ताजी हवा आये,   
तो उसे लगता है कि यह उसके सुझाव के कारण है। परन्तु यदि उस खिड़की   
से फिक का शोर आता है, तो उसके पास बोलने को कुछ भी नहीं है।   
**ऐसे ही अज्ञानी मानता है कि जो अच्छा होता है, वह उसके कारण   
होता है और जो बुरा होता है, वह भवितव्यता के कारण होता है।**

⁕ **गाथा ९६** ⁕

**एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ।**

**अप्पाणं अवि य परं करेदि अण्णाणभावेण। ९६॥**

***इसप्रकार अज्ञानी जीव अज्ञानभाव से परद्रव्यों को अपनेरूप   
और स्वयं को पररूप करता है।***

जैसे कोई शराबी नशे के कारण अपनी माँ को अपनी 'पत्नी' और   
अपनी पत्नी को अपनी 'माँ' कहता है। भले ही वह कभी अपनी माँ को   
'माँ' और अपनी पत्नी को 'पत्नी' कहता हो, फिर भी वह शराब के नशे   
में ही है। **ऐसे ही अज्ञानी मानता है कि परद्रव्य मेरे हैं और मैं परद्रव्य   
का हूँ। भले ही शास्त्रों को पढ़कर वह ऊपर−ऊपर से बोलता हो कि   
मैं आत्मा हूँ और परद्रव्य मेरे नहीं हैं। फिर भी आत्मानुभूति न होने के   
कारण उसकी मान्यता मिथ्या ही है।**

⁕ **गाथा ९७** ⁕

**एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो।**

**एवं खलु जो जाणदि सो मुञ्चदि सव्वकत्तितं॥ ९७॥**

***इसकारण निश्चयनय के विशेषज्ञ ज्ञानियों ने उक्त आत्मा को   
कर्ता कहा है − निश्चयनय से जो ऐसा जानता है, वह सर्व कर्तृत्व   
को छोड़ देता है।***

एक राजा अपनी जेल में जाता है और सभी कैदियों से पूछता है कि   
वे जेल में क्यों हैं? सभी कैदियों ने कहा कि हम तो निर्दोष हैं और हमने   
कोई अपराध नहीं किया है। एक कैदी ने अपना अपराध कबूल करते हुए   
कहा कि वह पीता था, अपनी पत्नी को पीटता था, इत्यादि। राजा ने इस   
कैदी को रिहा कर दिया क्योंकि उसे अपने अपराध का एहसास हो रहा   
था, अतः वह उसे फिर से नहीं दोहराएगा। अन्य कैदी आश्चर्यचकित हो   
गए। राजा ने उनसे कहा कि आपने अपराध स्वीकार नहीं किया, इसलिए   
आपको रिहा नहीं किया, क्योंकि आप रिहा होकर फिर वही अपराध   
दोहराएँगे। **ऐसे ही सभी प्रकार की मिथ्या मान्यताओं का कर्तृत्व तभी   
छूट सकता है, जब जीव सर्वप्रथम अपने अपराध का स्वीकार करें।**

⁕ **गाथा ९८** ⁕

**ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि।**

**करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि॥ ९८॥**

***व्यवहार से आत्मा घट−पट – रथ इत्यादि वस्तुओं को, इन्द्रियों   
को, अनेक प्रकार के क्रोधादि द्रव्यकर्मों को और शरीरादि नोकर्मों   
को करता है।***

व्यवहारनय से कोई व्यक्ति भूतकाल में किये गए कर्मों के उदय से मिले   
संयोगों को अपना कह सकता है। जैसे – अपना घर, गाड़ी, पत्नी, आदि।

⁕ **गाथा ९९** ⁕

**जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज नियमेण तम्मओ होज्ज।**

**जम्हा ण तम्मओ तेण सो न तेसिं हवदि कत्ता॥ १९॥**

***यदि आत्मा निश्चय से भी परद्रव्यों को करे तो वह नियम से   
तन्मय (परद्रव्यमय) हो जाये, किन्तु वह तन्मय (परद्रव्यमय) नहीं   
है; इसलिए वह उनका कर्ता भी नहीं है।***

जैसे पानी स्वयं बर्फ में परिणमित हो जाता है, इसलिए पानी बर्फ   
का कर्ता है। **ऐसे ही आत्मा पुद्‌गल आदि किसी भी परद्रव्यरूप   
परिणमित नहीं होता है, अतः पुद्‌गल आदि किसी भी परद्रव्य का   
कर्ता आत्मा नहीं है।**

⁕ **गाथा १००** ⁕

**जीवो न करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।**

**जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता॥ १००॥**

***आत्मा घट को नहीं करता, पट को नहीं करता और शेष अन्य   
द्रव्यों को भी नहीं करता; किन्तु जीव घट−पट को करने के विकल्प   
वाले अपने योग और उपयोग का कर्ता अवश्य होता है।***

जैसे शिक्षक अपने छात्रों के परिणामों का कर्ता नहीं होता, वह सिर्फ   
निमित्त मात्र है। घड़ा बनने में कुम्हार के भाव और शरीर की क्रिया, ये   
दोनों निमित्त कारण हैं, परन्तु कर्ता नहीं हैं। **ऐसे ही आत्मा अपने भावों   
का निमित्त कारण है, स्वयं के योग एवं उपयोग का कर्ता भी है।**

⁕ **गाथा १०१** ⁕

**जे पोग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा।**

**ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी॥ १०१॥**

***ज्ञानावरणादिक पुद्‌गल द्रव्यों के जो परिणाम हैं, उन्हें जो   
आत्मा करता नहीं है, परन्तु जानता है; वह आत्मा ज्ञानी है।***

एक व्यक्ति शनिवार के दिन कुछ रुपये निकालने के लिए बैंक जाना   
चाहता है। बैंक एक बजे बंद हो जाता है और वह अपने घर से बारह बजकर   
पैंतालीस मिनट पर इस उम्मीद के साथ निकलता है कि वह एक बजे से   
पहले पहुँच जाएगा। परन्तु वह एक बजकर पाँच मिनट पर पहुँचता है और   
रुपये नहीं निकाल पाता है। तब वह ड्राइवर द्वारा धीरे−धीरे गाड़ी चलाने   
को और ट्रैफिक को जिम्मेदार ठहराता है। हालाँकि, रुपये तो सोमवार को   
ही आना निश्चित था, अतः उसे किसी अन्य व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराना   
चाहिए। **ज्ञानी ऐसा जानते एवं मानते हैं कि सब कुछ कर्मोदय से होता   
है, इसलिए वे अनुकूल एवं प्रतिकूल संयोगों में विचलित नहीं होते हैं।**

⁕ **गाथा १०२** ⁕

**जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।**

**तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा॥ १०२॥**

***आत्मा जिस शुभ या अशुभ भाव को करता है, उस भाव का   
वह वास्तव में कर्ता होता है और वह भाव उसका कर्म होता है तथा   
वह आत्मा उस भाव का भोक्ता भी होता है।***

जैसे कोई व्यक्ति टेलीविजन पर क्रिकेट मैच देख रहा है। तब उसे   
खाने के लिए एक चॉकलेट दी जाती है और वह उसका आनन्द लिए बिना   
उसे खाता है, क्योंकि वह क्रिकेट मैच में अत्यंत तल्लीन है। **कोई भी व्यक्ति   
अपने भावों को भोगता है, सामने आने वाले पुद्‌गल पदार्थों को नहीं।**

⁕ **गाथा १०३** ⁕

**जो जहि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे।**

**सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं॥ १०३॥**

***जो वस्तु जिस द्रव्य में और जिस गुण में वर्तती है, वह अन्य   
द्रव्य में या अन्य गुण में संक्रमण को प्राप्त नहीं होती। अन्यरूप से   
संक्रमण को प्राप्त न होती हुई वह वस्तु अन्य वस्तु को कैसे परिणमन   
करा सकती है ?***

यदि किसी व्यक्ति को खून की उल्टी हो, तो वह मानता है कि खून   
उसका हिस्सा है और उसे उल्टी हो रही है। हालाँकि, आत्मा का ज्ञान स्वभाव   
में परिणमित नहीं हुआ है, इसलिए उल्टी में बहने वाला खून आत्मा   
नहीं है। **आत्मा किसी भी परद्रव्य को परिणमित नहीं कर सकता।**

⁕ **गाथा १०४** ⁕

**दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि।**

**तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता॥ १०४॥**

***आत्मा पुद्‌गलमय कर्म के द्रव्य व गुण को नहीं करता। उन   
दोनों को न करता हुआ वह आत्मा उनका कर्ता कैसे हो सकता है ?***

जैसे कोई अमेरिकन नागरिक भारत का राष्ट्रपति नहीं बन सकता।   
उसके पास भारतीय नागरिकता होनी चाहिए। **ऐसे ही आत्मा और कार्माण   
वर्गणा स्वतंत्र द्रव्य हैं, वे एक−दूसरे के कर्ता नहीं बन सकते।**

⁕ **गाथा १०५** ⁕

**जीवम्हि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।**

**जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण॥ १०५ ॥**

***जीव के निमित्तभूत होने पर कर्मबंध का परिणाम होता हुआ   
देखकर ‘जीव ने कर्म किया’ − इसप्रकार मात्र उपचार से कह दिया जाता है।***

जैसे माँ बच्चे को जन्म देती है, लेकिन बच्चे के नाम के साथ हमेशा   
पिता का नाम लगता है, क्योंकि वह उसके जन्म में निमित्त कारण है।   
**व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि कर्मबंधन का कर्ता जीव है,   
चूँकि कर्मबंधन में जीव निमित्त मात्र है। कार्माण वर्गणा कर्मबंधन   
की कर्ता है।**

⁕ **गाथा १०६** ⁕

**जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो।**

**ववहारेण तह कदं णाणावरणादि जीवेण॥ १०६॥**

***जिसप्रकार योद्धाओं के द्वारा युद्ध किये जाने पर 'राजा ने युद्ध   
किया' – इसप्रकार लोग कहते हैं; उसीप्रकार ज्ञानावरणादि कर्म   
जीव ने किया – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।***

जैसे हम कहते हैं कि स्वीट्ज़रलैंड दुनिया के भ्रष्टाचारमुक्त देशों में   
प्रमुख है। वास्तव में स्वीट्ज़रलैंड के राजनेता और नागरिक भ्रष्टाचारमुक्त   
हैं। **इसीतरह, व्यवहारनय से जीव कर्मों को बाँधता है, हालाँकि,   
निश्चयनय से कार्माण वर्गणा कर्म को बाँधती है।**

⁕ **गाथा १०७** ⁕

**उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य।**

**आदा पोग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं॥ १०७॥**

***आत्मा पुद्‌गल द्रव्य को उत्पन्न करता है, करता है, बाँधता है,   
परिणमन कराता है और ग्रहण करता है – यह व्यवहारनय का कथन है।***

जैसे माँ बच्चे को जन्म देती है, उसे खिलाती है, उसे बड़ा करती है,   
उसे पढ़ाई आदि कराती है। यह व्यवहारनय का कथन है। वास्तव में बच्चा   
अपने कारण जन्म लेता है, बड़ा होता है, पढ़ाई करता है।

***ऐसे ही व्यवहारनय से आत्मा पुद्‌गल द्रव्य का उत्पादक है,   
करता है, बाँधता है, पलटाता है और ग्रहण करता है। हालाँकि,   
निश्चयनय से कार्माण वर्गणा स्वयं ही आत्मा को बाँधती है।***

⁕ **गाथा १०८** ⁕

**जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो।**

**तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो॥ १०८॥**

***जिसप्रकार राजा को प्रजा के दोष और गुणों को उत्पन्न   
करनेवाला कहा जाता है; उसीप्रकार यहाँ जीव को पुद्‌गल द्रव्य के   
द्रव्य–गुणों को उत्पन्न करनेवाला कहा गया है।***

जैसे विद्यार्थी की सफलता या असफलता के कारण शिक्षक की   
प्रशंसा या आलोचना की जाती है, वास्तव में विद्यार्थी की सफलता या   
असफलता का असली कारण विद्यार्थी स्वयं है। शिक्षक निमित्त होने के   
कारण उनकी प्रशंसा या आलोचना की जाती है। **ऐसे ही पुद्‌गल के   
परिणमन में जीव निमित्त है। वास्तव में पुद्‌गल द्रव्य के परिणमन में   
पुद्‌गल द्रव्य स्वयं ही कारण है।**

⁕ **गाथा १०९–११०–१११–११२** ⁕

**सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।**

**मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा॥ १०९॥**

**तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो।**

**मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं॥ ११०॥**

**एदे अचेदणा खलु पोग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा।**

**तेजदि करेंति कम्मं ण वि तेसिं वेदगो आदा॥ १११॥**

**गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा।**

**तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि॥ ११२॥**

***चार सामान्य प्रत्यय बंध के कर्ता कहे जाते हैं। उन्हें मिथ्यात्व,   
अविरति, कषाय और योग के रूप में जानना चाहिए। इन चार   
प्रत्ययों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान   
पर्यन्त तेरह भेद कहे गये हैं। ये सभी अचेतन हैं, क्योंकि पुद्‌गलकर्म   
के उदय से उत्पन्न होते हैं। यदि ये चार प्रत्यय या तेरह गुणस्थान रूप   
प्रत्यय कर्मों को करते हैं तो भले करें। आत्मा इन कर्मों का भोक्ता   
भी नहीं है। चूँकि ये गुण नामक प्रत्यय अर्थात् गुणस्थान कर्म करते   
हैं, इसलिए जीव तो इन कर्मों का अकर्ता ही रहा और गुण ही कर्मों   
को करते हैं।***

**आत्मा में उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के भाव आत्मा से   
महान नहीं हैं, क्योंकि सभी प्रकार के भाव क्षणिक हैं और आत्मा   
नित्य है। कोई भी अनित्य नित्य से महान नहीं हो सकता।**

आत्मा में उत्पन्न होने वाले पूजा−भक्ति, दान, करुणा, तप एवं   
व्रतादि के भाव क्षणिक हैं, इसलिए वे नित्य आत्मा से महान नहीं हैं।

किसी व्यक्ति द्वारा पहने हुए कपड़े को उस व्यक्ति के शरीर से कम   
महत्त्व दिया जाता है। क्योंकि कपड़े को आग लगे, तो कपड़े जल्दी ही दूर   
फेंक देते हैं। **ऐसे ही आत्मा शरीर से अधिक महिमावान है।**

**पूर्वकृत कर्मोदय से आत्मा में भाव उत्पन्न होते हैं। कर्मों का   
उदय क्षणिक है एवं प्रतिसमय उतार−चढ़ाव वाला होता है। इसलिए   
मोह, राग एवं द्वेष के भाव भी क्षणिक हैं एवं प्रतिसमय उतार–चढ़ाव   
वाले होते हैं।**

किसी गरीब व्यक्ति को हीन नहीं देखना चाहिए, क्योंकि उसकी वर्तमान   
परिस्थिति उसके कर्मों के फल के कारण है। इसीतरह किसी आतंकवादी   
को हिंसा के लिए दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए, क्योंकि वह भी उसके   
कर्मों के फल के कारण है। **प्रतिसमय यह जागृति बनी रहें कि सभी   
जीवों ने भूतकाल में कभी न कभी ऐसे ही हिंसा के भाव भाए हैं।**

जैसे जिसके शरीर पर तेल लगा हुआ है, ऐसे पहलवान के शरीर पर   
धूल सहज ही आ जाती है। **ऐसे ही शुभाशुभ भाव सहित आत्मा को   
सहज ही कर्मों का आस्रव होता है।**

**क्षणिक भाव नित्य ज्ञान स्वभाव से न्यारे हैं, अतः वे भाव जड़   
हैं एवं आत्मा चैतन्यमय एवं ज्ञान से परिपूर्ण है।**

⁕ **गाथा ११३–११४–११५** ⁕

**जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो।**

**जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं॥ ११३॥**

**एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु नियमदो तहाऽजीवो।**

**अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं॥ ११४॥**

**अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।**

**जह कोहो तह पच्चय कम्मं गोकम्ममवि अण्णं॥ ११५॥**

***जिसप्रकार जीव से उपयोग अनन्य है; उसीप्रकार यदि क्रोध   
भी जीव से अनन्य हो तो जीव और अजीव में अनन्यत्व हो जायेगा,   
एकत्व हो जायेगा। ऐसा होने पर इस जगत में जो जीव है, वही नियम   
से अजीव ठहरेगा और इसीप्रकार का दोष प्रत्यय, कर्म और नोकर्म के   
साथ भी आयेगा। यदि इस भय से तू यह कहे कि क्रोध अन्य है और   
उपयोगस्वरूपी जीव अन्य है तो जिसप्रकार क्रोध जीव से अन्य होगा;   
उसीप्रकार प्रत्यय, कर्म और नोकर्म भी जीव से अन्य सिद्ध होंगे।***

जब शक्कर एवं नींबू का मिश्रण करने पर उसमें पानी डालने पर नींबू   
का जूस बन सकता है। हालाँकि, शक्कर की मिठास और नींबू का खट्टापन   
स्वतंत्र रहता है, वे एक−दूसरे में मिलते नहीं हैं, क्योंकि शक्कर एवं नींबू   
एक–दूसरे में मिलते नहीं हैं। **यदि एक द्रव्य का गुण, दूसरे द्रव्य के गुण   
में पलट जाए, तो एक द्रव्य भी दूसरे द्रव्य में पलट जाए।**

जब लड़की एवं लड़का तलाक लेते हैं, तब दोनों के परिवारजन भी   
अलग–अलग हो जाते हैं और रिश्ते भी टूट जाते हैं। **एक द्रव्य का गुण   
दूसरे द्रव्य के गुण से अलग होता है। दो गुण भी एक–दूसरे से अलग   
रहते हैं, इसलिए दो द्रव्य भी एक−दूसरे से अलग रहते हैं।**

जब दर्पण धूल से ढँक जाता है, तो कोई सामने की वस्तुओं का   
प्रतिबिम्ब उसमें नहीं दिख सकता। हालाँकि, दर्पण का प्रतिबिम्बित करने   
का स्वभाव कायम रहता है, अब वह दर्पण धूल को प्रतिबिम्बित करता है।   
**ऐसे ही मोह, राग, द्वेष आदि मलिन भावों से ढँका आत्मा सारे जगत   
को जान–देख नहीं सकता। हालाँकि, आत्मा का जानने का स्वभाव   
कायम रहता है और वह मलिन भावों को जानता है।**

⁕ **गाथा ११६–११७–११८–११९–१२०** ⁕

**जीवे ण सय बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।**

**जइ पोग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि॥ ११६॥**

**कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण।**

**संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा॥ ११७॥**

**जीवो परिणामयदे पोग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।**

**ते सयमपरिणमंते कहं णु परिणामयदि चेदा॥ ११८॥**

**अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोग्गलं दव्वं।**

**जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा॥ ११९॥**

**णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चिय होदि पोग्गलं दव्वं।**

**तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव॥ १२०॥**

***'यह पुद्‌गलद्रव्य जीव में स्वयं नहीं बँधा और कर्मभाव से स्वयं   
परिणमित नहीं हुआ' – यदि ऐसा माना जाये तो वह पुद्‌गलद्रव्य   
अपरिणामी सिद्ध होता है और कार्मणवर्गणाएँ कर्मभाव से परिणमित   
नहीं होने से संसार का अभाव सिद्ध होता है अथवा सांख्यमत का   
प्रसंग आता है। यदि ऐसा माना जाये कि जीव पुद्‌गलद्रव्यों को   
कर्मभाव से परिणमाता है तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वयं नहीं   
परिणमती हुई उन कार्मणवर्गणाओं को चेतन आत्मा कैसे परिणमन   
करा सकता है? यदि ऐसा माना जाये कि पुद्‌गल द्रव्य अपने आप   
ही कर्मभाव से परिणमनकरता है तो जीव कर्म (पुद्‌गलद्रव्य) को   
कर्मरूप परिणमन कराता है – यह कथन मिथ्या सिद्ध होता है। अतः   
ऐसा जानो कि जिसप्रकार नियम से कर्मरूप (कर्ता के कार्यरूप)   
परिणमित पुद्‌गलद्रव्य कर्म ही है; उसीप्रकार ज्ञानावरणादिरूप   
परिणत पुद्‌गलद्रव्य ज्ञानावरणादि ही है।***

निश्चयनय से पानी का स्वभाव शीतलता है, परन्तु जब उसे गर्म   
किया जाता है, तो व्यवहारनय से उसकी अवस्था गर्म होती है। अतः   
व्यवहारनय के कथन का निषेध नहीं करना चाहिए, क्योंकि गर्म पानी   
जलने का कारण बन सकता है।

**सांख्यदर्शन केवल एक ही दृष्टिकोण को मानता है – आत्मा   
नित्य शुद्ध है और कर्म का कर्ता नहीं है। जबकि जैनदर्शन निश्चय   
और व्यवहार दोनों नयों को मानता है। निश्चयनय से आत्मा सदा   
शुद्ध है और कर्म से न्यारा है। व्यवहारनय से आत्मा कर्म के फल में   
जन्म–मरण करके संसार में भटकता है। दोनों नय सत्य हैं और कोई   
भी नय एकांत से निषेध करने योग्य नहीं है।**

जब दूध में से पनीर बनाया जाता है, तब पनीर बनाने वाला निमित्त   
कारण है एवं दूध स्वयं उपादान कारण है। इसी प्रकार **जब कार्माण**

**वर्गणा कर्मरूप परिणमित होती है, तब जीव के विकारी भाव उसमें   
निमित्त होते हैं एवं कार्माण वर्गणा स्वयं उपादान कारण है।**

जब कोई सुनार सोने से अंगूठी बनाता है, तब वह सोने के उतने   
भाग को उपयोग में लेता है, जितने भाग में सोने की अंगूठी बनने की   
योग्यता होती है। सुनार अंगूठी बनने में निमित्त कारण है। **जब जीव   
कार्माण वर्गणा को कर्म के रूप में बाँधता है, तब उतनी कार्माण   
वर्गणा कर्मरूप परिणमित होती है, जिनकी कर्मरूप परिणमित होने   
की योग्यता होती है। जीव कर्म का निमित्त कारण है।**

जैसे टेलीविज़न सेट पुद्‌गल से बना होता है, लेकिन वह टेलीविज़न   
के रूप में जाना जाता है। **ऐसे ही कार्माण वर्गणा से ज्ञानावरणी कर्म   
बनता है, फिर वे वर्गणायें ज्ञानावरणी कर्म के रूप में जानी जाती हैं।**

⁕ **गाथा १२१–१२२–१२३–१२४–१२५** ⁕

**ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं।**

**जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि॥ १२१॥**

**अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं।**

**संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा॥ १२२॥**

**पोग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं।**

**तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो॥ १२३॥**

**अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी।**

**कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा॥ १२४॥**

**कोहुवजुत्तो कोही माणवजुत्तो य माणमेवादा।**

**माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो॥ १२५॥**

***'यह जीव कर्म में स्वयं नहीं बँधता और क्रोधादिभाव में स्वयमेव   
नहीं परिणमता' – यदि ऐसा तेरा मत है तो यह जीव द्रव्य अपरिणामी   
सिद्ध होगा। जीव द्रव्य स्वयं क्रोधादिभावरूप परिणमित नहीं होने से   
संसार का अभाव सिद्ध होता है अथवा सांख्यमत का प्रसंग आता   
है। यदि ऐसा माना जाये कि क्रोधरूप पुद्‌गलकर्म जीव को क्रोधरूप   
परिणमन कराता है तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वयं नहीं   
परिणमते हुए जीव को क्रोधकर्म, क्रोधरूप कैसे परिणमा सकता   
है ? तथा यदि ऐसा माना जाये कि आत्मा स्वयं ही क्रोधभावरूप   
से परिणमता है तो फिर – क्रोधकर्म जीव को क्रोधरूप परिणमाता   
है – यह कथन मिथ्या सिद्ध होता है। अतः यह मानना ही ठीक है   
कि क्रोध में उपयुक्त आत्मा क्रोध ही है, मान में उपयुक्त आत्मा मान   
ही है और माया में उपयुक्त आत्मा माया ही है और लोभ में   
उपयुक्त आत्मा लोभ ही है।***

जैसे फैक्टरी का मालिक कोई शारीरिक कार्य नहीं करता है, लेकिन   
देख–रेख करता है और मजदूरों को प्रेरित करता है। **ऐसे ही आत्मा   
शारीरिकरूप से कुछ भी नहीं करता है, लेकिन क्रोध, मान, माया,   
लोभ आदि भावों का ज्ञाता−दृष्टा रहता है एवं उनका अनुभव करता है।**

जब कोई बीमार पड़ता है, तो वह बीमारी के लिए वातावरण, भोजन   
इत्यादि को दोष देता है। ये तो बीमार होने में निमित्त कारण हैं। बाकी   
दूसरे लोग भी उसी वातावरण में रहकर, ऐसा ही भोजन करके बीमार नहीं   
पड़े। **ऐसे ही आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह, राग एवं द्वेषरूप मलिन   
भावों में मित्र, शत्रु, इत्यादि निमित्त होते हैं, अतः किसी पराये को   
दोष नहीं देना चाहिए।**

जिसप्रकार थर्मामीटर मरीज़ का तापमान मापता है। जब वह तेज   
बुखार दिखाता है, तो व्यक्ति थर्मामीटर को बुखार का कारण मानकर उसे   
दूर फेंक देता है। उसे तो बीमारी को ठीक करने के लिए ठीक तरह से दवा   
लेनी चाहिए। क्योंकि थर्मामीटर तो बढ़ते या घटते बुखार को मापने के   
लिए उपयोगी है। **इसीप्रकार शत्रु को देखने पर क्रोध का भाव उत्पन्न**

**होता है। यदि कोई व्यक्ति उससे भागकर दूसरी जगह चला जाए, तो   
भी क्रोध टिका ही रहता है। शत्रु के स्वभाव को यथायोग्य समझकर   
शत्रुता का नाश करना चाहिए। वही क्रोध को मिटाने की औषधि है।   
प्रतिकूल संयोगों से आत्मा में बचे विकारी भाव मापने में आते हैं।**

जैसे दर्पण को साफ़ करने पर भी चेहरे पर दाग ऐसा का ऐसा ही   
बना रहता है। व्यक्ति को उपचार करके दाग को दूर करना चाहिए। **ऐसे ही   
बाह्य संयोगों में परिवर्तन करने से भी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि   
विकारी भाव ऐसे के ऐसे ही बने रहते हैं। जीव को पुरुषार्थ करके उन   
विकारी भावों को दूर करना चाहिए।**

जैसे पानी का स्वभाव ठंडा होता है, लेकिन जब आग के संपर्क में   
आता है, तब वह गर्म हो जाता है। **ऐसे ही आत्मा का स्वभाव ज्ञान है,   
लेकिन जब क्रोध के साथ जुड़ता है, तब वह ज्ञान क्रोधमय हो जाता   
है। मान, माया, लोभ आदि भाव भी ज्ञान को मानमय, मायामय,   
लोभमय, इत्यादिमय होने में कारण होते हैं।**

⁕ **गाथा १२६** ⁕

**जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।**

**णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स॥ १२६॥**

***आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावरूप कर्म का कर्ता   
होता है। अज्ञानी के वे भाव अज्ञानमय होते हैं और ज्ञानी के ज्ञानमय।***

सागर गहराई में निस्तरंग शांत होता है, फिर भी जो व्यक्ति सतह   
पर है, वह व्यक्ति उसी सागर को तरंगरूप अशांत अनुभव करता है। सभी   
को जो व्यक्ति सतह पर है, वही दिखाई देता है। **ज्ञानी आत्मा को ज्ञान   
से भरपूर निर्विकल्प 'अनुभव करते हैं। अज्ञानी आत्मा को अज्ञान से   
भरपूर विकल्परूप अनुभव करते हैं। अतः ज्ञानी की खोज के लिए   
निजात्मा में डुबकी लगानी चाहिए।**

⁕ **गाथा १२७** ⁕

**अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।**

**णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि॥ १२७॥**

**अज्ञानी के भाव अज्ञानमय होने से अज्ञानी कर्मों को करता है   
और ज्ञानी के भाव ज्ञानमय होने से ज्ञानी कर्मों को नहीं करता।**

जैसे एक राजकुमार महल में ऊपर देखकर चलता है और वह किसी   
जीव को हानि नहीं पहुँचाता। एक साधु वन में चार हाथ ज़मीन देखकर   
सावधानी पूर्वक चलते हैं, फिर भी उनसे किसी जीव का घात हो सकता   
है। ऐसे में राजकुमार को बेहोशी एवं लापरवाही के कारण कर्मबंधन होता   
है, जबकि जागृति एवं सावधानी के कारण मुनि को कर्मबंधन नहीं होता   
है। **ऐसे ही अज्ञानी बेहोश होने से कर्म को बाँधता है, जबकि ज्ञानी   
जागृत होने से कर्म को नहीं बाँधते हैं।**

⁕ **गाथा १२८–१२९** ⁕

**णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो।**

**जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया॥ १२८॥**

**अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो।**

**जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स॥ १२९ ॥**

***क्योंकि ज्ञानमय भाव में से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते   
हैं; इसलिए ज्ञानियों के समस्त भाव ज्ञानमय ही होते हैं। क्योंकि   
अज्ञानमय भाव में से अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते हैं; इसलिए   
अज्ञानियों के सभी भाव अज्ञानमय ही होते हैं।***

गर्भधारण के समय आत्मा शरीर में प्रवेश करता है। तब 'मैं पुरुष   
हूँ’, ऐसी मान्यता के कारण पुरुष के परमाणु विकसित होते हैं एवं स्त्री के   
परमाणु दबते जाते हैं। **ऐसे ही 'मैं ज्ञानी हूँ', ऐसा मानकर आत्मा ज्ञानी   
होता है एवं ' मैं अज्ञानी हूँ' ऐसा मानकर आत्मा अज्ञानी होता है। तुम   
जो सोचते हो, वही बन जाते हो।**

यदि फव्वारे के अन्दर साफ़ पानी होगा, तो उसमें से साफ़ पानी   
उछलेगा, वहीं दूसरे फव्वारे के अन्दर गंदा पानी होगा, तो उसमें से गंदा   
पानी उछलेगा। **ज्ञानी में से ज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं, अज्ञानी में से   
अज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं।**

⁕ **गाथा १३०–१३१** ⁕

**कणयमया भावादो जायंते कुण्डलादओ भावा।**

**अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी॥ १३०॥**

**अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते।**

**णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति॥ १३१॥**

***जिसप्रकार स्वर्णमयभाव में से स्वर्णमय कुण्डल आदि बनते   
हैं और लोहमय भाव में से लोहमय कड़ा आदि बनते हैं। उसीप्रकार   
अज्ञानियों के अनेकप्रकार के अज्ञानमय भाव होते हैं और ज्ञानियों   
के सभी भाव ज्ञानमय होते हैं।***

जैसे आटे में से ही रोटी बन सकती है और शक्कर में से मिठाई बन   
सकती है। उन्हें परस्पर बदला नहीं जा सकता। और जैसे गाय हमेशा बछड़े   
को ही जन्म देती है और महिला हमेशा मनुष्य को ही जन्म देती है। **ऐसे   
ही अज्ञानमय भाव अज्ञानी में से ही एवं ज्ञानमय भाव ज्ञानी में से ही   
उत्पन्न होते हैं।**

⁕ **गाथा १३२–१३३–१३४–१३५–१३६** ⁕

**अण्णाणस्स स उदओ जा जीवाणं अतच्चउवलद्धी।**

**मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं॥ १३२॥**

**उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं।**

**जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ॥ १३३॥**

**तं जाण जोग उदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो।**

**सोहणमसोहण वा कायव्वो विरदिभावो वा॥ १३४॥**

**एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागदं जं तु।**

**परिणमदे अट्टविहं णाणावरणादिभावेहिं॥ १३५॥**

**तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागदं जइया।**

**तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं॥ १३६॥**

***जीवों के जो अतत्त्व की उपलब्धि है, तत्त्व संबंधी अज्ञान है,   
वह अज्ञान का उदय है; जो तत्त्व का अश्रद्धान है, वह मिथ्यात्व का   
उदय है; जो अविरमण है, अत्याग का भाव है, वह असंयम का   
उदय है; जो मलिन उपयोग है, वह कषाय का उदय है। जो शुभ   
या अशुभ, प्रवृत्तिरूप या निवृत्तिरूप चेष्टा का उत्साह है, उसे योग   
का उदय जानो। इन उदयों के हेतुभूत होने पर जो कार्माणवर्गणागत   
पुद्‌गलद्रव्य ज्ञानावरणादि भावरूप से आठ प्रकार परिणमता है,   
वह कार्माणवर्गणागत पुद्‌गलद्रव्य जब जीव से बँधता है; तब जीव   
अपने अज्ञानमय परिणाम भावों का हेतु होता है।***

कुछ दोस्त एक नदी के किनारे बैठे थे। देर रात्रि में उन्होंने बहुत   
शराब पी और नशे में मदमस्त हो गए। नदी के किनारे पर एक पेड़ के साथ   
रस्सी से बंधी नाव में वे बैठे और पतवार चलाने लगे। जब सुबह हुई, तो

उन्होंने सोचा, चलो देखते हैं कि हम कहाँ पहुँचे हैं ? लेकिन वास्तव में   
वे उसी स्थान पर थे, क्योंकि उन्होंने नाव की रस्सी को पेड़ से छोड़ा नहीं   
था। **मिथ्यात्व भाव से मिथ्यात्व कर्म का बंध होता है। आत्मा का   
अनुभव होने पर क्षणिक का यथार्थ बोध होता है।**

किसी माँ के पास एक ही आँख थी। उसका बेटा शहर जाकर बड़ा   
अफ़सर बन गया। तब से वह अपनी माँ से नफरत करने लगता है, क्योंकि   
उसके पास केवल एक आँख है। वह माँ अपनी मृत्यु के समय एक नोट   
छोड़ जाती है, जिसमें लिखा था कि बेटा ! सच्चाई यह है कि जब तू पैदा   
हुआ था, तब काना पैदा हुआ था। इसलिए मैंने अपनी एक आँख तुम्हें   
दान कर दी थी। **अज्ञानता के कारण मिथ्याभाव पैदा होते हैं। आत्मा   
के ज्ञान से नित्य आत्मा का अनुभव होता है।**

मनुष्य रात्रिभोजन करता है, शाकाहारी एवं अशाकाहारी दोनों पदार्थों   
का भक्षण करता है, आजीवन दूध पीता है। पशु रात्रि में भोजन नहीं करते,   
सिर्फ शाकाहारी अथवा अशाकाहारी ही होते हैं, बड़े होने पर दूध पीना   
छोड़ देते हैं। **असंयम के उदय से मनुष्य असंयमी रहता है।**

एक लड़का एक मैरिज ब्यूरो में गया। वहाँ दो दरवाजे थे, जो युवा   
या वृद्ध स्त्री चुनने के लिए थे, फिर आगे दो दरवाजे थे, जो सुंदर या   
साधारण दिखने वाली, फिर गाना गाने वाली या गाना नहीं गाने वाली और   
अंत में खाना बना सकती हो ऐसी या जो खाना बना न सके ऐसी। उसने   
युवा, सुंदर, गायक और जो खाना बना सकती हो, ऐसी स्त्री को चुना।   
अंतिम द्वार से कमरे की ओर गया और देखा कि एक बड़े दर्पण के अलावा   
अंदर कोई नहीं है, वहाँ लिखा था कि 'अपने आप से पूछो कि तुम स्वयं   
इतनी बड़ी पसंद पाने के काबिल भी हो ?' **इच्छायें अनन्त हैं, आत्मा के   
निर्विकल्प ध्यान से उन पर विजय पाई जा सकती है।**

जब कोई व्यक्ति दुःख एवं बेचैनी के कारण अपने शरीर के अंगों को   
हिलाता है, उससे आत्मप्रदेशों में कंपन होता है। **सिद्ध परमात्मा सदैव   
अकंप है।**

⁕ **गाथा १३७−१३८** ⁕

**जड़ जीवेणसह च्चिय पोग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।**

**एवं पोग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा॥ १३७॥**

**एकस्स दु परिणामो पोग्गलदव्वस्स कम्मभावेण।**

**ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो॥ १३८॥**

***'पुद्‌गलद्रव्य का जीव के साथ ही कर्मरूप परिणाम होता है   
अर्थात् जीव और पुद्‌गल दोनों मिलकर कर्मरूप परिणमित होते   
हैं' – यदि ऐसा माना जाये तो पुद्‌गल और जीव दोनों ही कर्मत्व   
को प्राप्त हो जायें; परन्तु कर्मरूप परिणमित तो एक पुद्‌गलद्रव्य   
ही होता है, इसकारण जीवभाव के हेतु बिना ही कर्म पुद्‌गल का   
परिणाम है।***

पत्थर जब ईंट से टकराता है, तो ईंट टूट जाती है। लेकिन पत्थर को   
कुछ नहीं होता। इसीप्रकार कर्म का फल आत्मा के लिए हानिकारक है,   
लेकिन कर्म के स्वयं के लिए नहीं। यदि ईंट पत्थर से अलग रहे, तो वह   
पत्थर से अप्रभावित रहती है। **ऐसे ही यदि आत्मा जागृत रहकर कर्म से   
अलिप्त रहे, तो वह कर्म से अप्रभावित रहता है।**

यदि पानी में चीनी मिला दी जाए, तो पानी एवं चीनी के मिश्रण के   
कारण मिठास नहीं होती है, केवल चीनी के कारण ही मिठास होती है।   
आत्मा और कर्म बँधे हुए हैं। **आत्मा और कर्म के संयोग से विकारी   
भावों की उत्पत्ति नहीं होती है, वह तो सिर्फ आत्मा का परिणमन है।**

⁕ **गाथा १३९−१४०** ⁕

**जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी।**

**एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा॥ १३९॥**

**एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं।**

**ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो॥ १४०॥**

***'जीव को कर्म के साथ ही रागादि परिणाम होते हैं अर्थात्   
कर्म और जीव दोनों मिलकर रागादिरूप परिणमित होते हैं' – यदि   
ऐसा माना जाये तो जीव और कर्म दोनों ही रागादिभावपने को प्राप्त   
हो जायें; परन्तु रागादिभावरूप तो एक जीव ही परिणमित होता है।   
इसकारण कर्मोदयरूप हेतु के बिना ही रागादिभाव जीव के परिणाम हैं।***

जब मिट्टी घड़े में परिणमित होती है, तब कुम्हार निमित्त कारण   
है एवं मिट्टी उपादान कारण है। **ऐसे ही जब कार्माण वर्गणा कर्मरूप   
परिणमित होती है। तब आत्मा के विकारी भाव निमित्त कारण हैं एवं   
कार्माण वर्गणा उपादान कारण है।**

एक महिला तेज गर्मी के दिनों में समुद्र में तैर रही थी, परन्तु वह   
सनस्क्रीन लगाना भूल गयी थी। वह धूप से झुलस गयी और उसके लिए   
सूरज को दोषी ठहराने लगी। वास्तव में उसका विस्मरण ही उसके झुलसने   
का कारण बना था। **इसीप्रकार आत्मा के विकारी भाव आत्मा के   
कर्मबंधन में निमित्त कारण हैं, उपादान कारण तो कार्माण वर्गणा है।   
कर्म आत्मा से न्यारे हैं।**

⁕ **गाथा १४१** ⁕

**जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।**

**सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं॥ १४१॥**

***जीव में कर्म बँधा हुआ है और स्पर्शित है – ऐसा व्यवहारनय   
का कथन है और जीव में कर्म अबद्ध और अस्पर्शित है – यह   
शुद्धनय का कथन है।***

व्यवहार से पति−पत्नी शादी के बाद एक दूसरे से बँधे हैं। निश्चय   
से वे दोनों अलग–अलग मनुष्य हैं तथा एक–दूसरे से बँधे नहीं हैं।   
**व्यवहारनय से आत्मा एवं कर्म एक दूसरे से बँधे हैं। निश्चयनय से   
दोनों ही स्वंतंत्र हैं।**

⁕ **गाथा १४२** ⁕

**कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाग णयपक्खं।**

**पक्खादिक्कंतो पुणं भण्णदि जो सो समयसारो॥ १४२॥**

***जीव में कर्म बद्ध या अबद्ध हैं – इसप्रकार तो नय पक्ष जानो;   
किन्तु जो पक्षातिक्रान्त कहलाता है, समयसार तो वह है, शुद्धात्मा   
तो वह है।***

जैसे शक्कर को पैकेट में रखकर उस पर धागा बँधा हुआ है। फिर धागा   
हटाने पर, एक दृष्टिकोण से, शक्कर अभी−भी पैकेट में बँधी है। दूसरे दृष्टिकोण  
 से, शक्कर मुक्त है। दोनों दृष्टिकोणों से पार, शक्कर मिठास से भरपूर है। **ऐसे   
ही एक नय से आत्मा कर्मों के साथ बँधा है एवं दूसरे नय से आत्मा   
कर्मों से मुक्त है। दोनों नयों से पार, आत्मा परिपूर्ण चैतन्यमात्र है।**

⁕ **गाथा १४३** ⁕

**दोह वि णयाण भणिदं जाणदि णवरं तु समयपडिबद्धो।**

**ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो॥ १४३॥**

***नयपक्ष से रहित जीव समय से प्रतिबद्ध होता हुआ, चित्स्वरूप   
आत्मा का अनुभव करता हुआ दोनों ही नयों के कथनों को मात्र   
जानता ही है, किन्तु नयपक्ष को किंचित्मात्र भी ग्रहण नहीं करता।***

जैसे किसी व्यक्ति को चाँद नहीं दिखता हो, तो उसे पेड़ की सबसे   
ऊँची शाखा को देखने के लिए कहते हैं और फिर कहते हैं कि उस शाखा

के पीछे चाँद को देखो। एक बार जब वह चाँद को देख लेता है, तब वृक्ष अप्रयोजनभूत हो जाता है। **ऐसे ही जो आत्मार्थीजन आत्मा को जानने   
के लिए पुरुषार्थ करता है। उसके लिए आत्मा तक पहुँचने के लिए   
सभी नय उपयोगी हैं। एक बार आत्मा का अनुभव होने पर सभी नय अप्रयोजनभूत हो जाते हैं।**

⁕ **गाथा १४४** ⁕

**सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।**

**सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो॥ १४४॥**

***जो सर्वनयपक्षों से रहित कहा गया है, वह समयसार है। इसी******समयसार को ही केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान – ऐसी संज्ञा   
(नाम) मिलती है। तात्पर्य यह है कि नामों से भिन्न होने पर भी वस्तु   
एक ही है।***

जैसे ठंडे पानी से भरे सरोवर को शैवाल ढँक देती है, फिर भी सरोवर   
का पानी शैवाल से अप्रभावित रहता है और पानी की शीतलता वैसी ही   
कायम रहती है। **ऐसे ही आत्मा रागादिभाव एवं देह से अप्रभावित   
रहता है। बस, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ही आत्मा की प्राप्ति है।**

**पुण्य−पाप अधिकार**

⁕ **गाथा १४५** ⁕

**कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।**

**कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि॥ १४५॥**

***अशुभकर्म कुशील हैं और शुभकर्म सुशील हैं – ऐसा तुम   
जानते हो; किन्तु जो जीवों को संसार में प्रवेश करायें, वे सुशील   
कैसे हो सकते हैं ?***

**हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, आदि अशुभभाव एवं   
पूजा, भक्ति, परजीवों के प्रति दया, दान, आदि शुभभाव, ये दोनों   
ही कर्मबंधन के कारण हैं।**

जैसे कोई व्यापारी साधारण पुराने कपड़े बेचता है, वहीं दूसरा व्यापारी   
मशहूर हस्तियों के पुराने कपड़े बेचता है। जो व्यक्ति साधारण पुराने कपड़े   
खरीदना चाहता है, उसे किसी के द्वारा देख लेने पर हीनता का अनुभव होता   
है। वहीं दूसरे व्यक्ति को मशहूर हस्तियों के पुराने कपड़े खरीदने में गर्व होता   
है। दोनों ने पुराने कपड़े पहने हुए हैं, नए नहीं हैं। ऐसे ही **जो जीव पाप   
कर्म को बाँधता है, वह संसारचक्र में प्रवेश करता है, साथ ही जो   
जीव पुण्य 'कर्म को बाँधता है, वह भी संसारचक्र में प्रवेश करता है।**

⁕ **गाथा १४६** ⁕

**सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।**

**बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं॥ १४६॥**

***जिसप्रकार लोहे की बेड़ी के समान ही सोने की बेड़ी भी पुरुष   
को बाँधती है; उसीप्रकार अशुभकर्म के समान ही शुभकर्म भी जीव   
को बाँधता है।***

जैसे लोहे की हथकड़ी वाला व्यक्ति स्वयं को दुःखी महसूस करता है   
और छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन जिस व्यक्ति के पास सोने की हथकड़ी   
है, वह संतुष्ट है और उसे हथकड़ी बंधन होने पर भी आभूषण लगती है और   
वह अपने बंधनों से छुटकारा पाना नहीं चाहता है। इसीतरह, **जो अज्ञानी   
पापकर्म से बँधा है, वह तो उससे छुटकारा पाना चाहता है, लेकिन जो   
अज्ञानी पुण्यकर्म से बँधा है, वह उससे छुटकारा पाना नहीं चाहता।**

एक पक्षी सोने के पिंजरे में कैद है और दूसरा पक्षी लोहे के पिंजरे   
में है। पुण्यकर्म सोने के पिंजरे के समान है, जबकि पापकर्म लोहे के पिंजरे   
के समान है। दोनों बंधन के कारण हैं।

⁕ **गाथा १४७** ⁕

**तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसग्गं।**

**साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण॥ १४७॥**

***इसलिए इन दोनों कुशीलों के साथ राग और संसर्ग मत करो;   
क्योंकि कुशील के साथ राग और संसर्ग करने से स्वाधीनता का   
नाश होता है।***

सर्कस के लिए प्रशिक्षित करने के लिए हाथी को पहले गड्ढा खोदकर,   
उस पर घास ढककर पकड़ा जाता है। उसके सामने हथनी रखी जाती है,   
और जब वह उसकी ओर जाता है, तब वह गड्ढे में गिर जाता है। पहला   
प्रशिक्षक उसे कई दिन भूखा रखता है और मारपीट करता है। दूसरा   
प्रशिक्षक फिर उसे खिलाता–पिलाता है और सांत्वना देता है। उसके बाद   
हाथी दूसरा प्रशिक्षक जैसा कहे, वैसा प्रदर्शन करता है। उस हाथी का   
मानना है कि पहला प्रशिक्षक खराब है और दूसरा प्रशिक्षक अच्छा है।   
असल में दोनों प्रशिक्षक उसे फंसाने वाले हैं और बुरे हैं।

**पापकर्म का फल भूखा−प्यासा रखता है और प्रतिकूल संयोग   
देता है। पुण्यकर्म का फल भोजन − पानी देता है और अनुकूल संयोग   
देता है। दोनों के फल में पौद्गलिक संयोग प्राप्त होते हैं। दोनों मुक्ति   
के कारण नहीं हैं।**

⁕ **गाथा १४८−१४९** ⁕

**जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।**

**वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रागकरणं च॥ १४८॥**

**एमेव कम्मपयडीसीलसहावं च कुच्छिदं णादुं।**

**वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरदा॥ १४९॥**

***जिसप्रकार कोई पुरुष कुशील पुरुष को जानकर उसके साथ   
राग करना और संसर्ग करना छोड़ देता है; उसीप्रकार स्वभाव में   
रत पुरुष कर्म प्रकृति के कुत्सितशील (कुशील) को जानकर संसर्ग   
करना छोड़ देते हैं।***

जो युवक जुआ खेलने वाले दूसरे युवकों की बुरी संगति में रहता है,   
उसकी माँ उसे ऐसी बुरी संगति छोड़ने के लिए कहती है। जो ड्राइवर अपने   
गंतव्य स्थान की ओर जाने वाले दो रास्तों को जानता हो, वह हमेशा कम   
ट्रैफिक वाले रास्ते को चुनता है। इसीप्रकार, **जिस क्षण व्यक्ति कर्म के   
बुरे स्वभाव को जानता है, वह तात्कालिक उसका त्याग कर देता है।**

⁕ **गाथा १५०** ⁕

**रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो।**

**एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥ १५०॥**

**रागी जीव कर्म बाँधता है और वैराग्य को प्राप्त जीव कर्मों   
से छूटता है; यह जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है, इसलिए कर्मों**

***(शुभाशुभ कर्मों) से राग मत करो।***

जैसे तीन व्यक्ति हैं। कोई पहले व्यक्ति को प्रेम करता है, दूसरे व्यक्ति   
को नफरत करता है और तीसरे व्यक्ति को प्यार या नफरत कुछ नहीं करता।   
जब पहला व्यक्ति चला जाता है, तो वह दुःखी होता है। जब दूसरा व्यक्ति   
उसके पास आता है, तो भी वह दुःखी होता है। परन्तु तीसरा व्यक्ति जाए   
या आए, उसे कुछ भी दुःख नहीं होता। **राग एवं द्वेष के भाव ही दुःख   
के कारण हैं। वीतरागता से सुख है।**

⁕ **गाथा १५१** ⁕

**परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।**

**तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥ १५१॥**

***जो निश्चय से परमार्थ (परम पदार्थ) है, समय है, शुद्ध है,   
केवली है, मुनि है, ज्ञानी है; उस स्वभाव में स्थित मुनिजन निर्वाण   
को प्राप्त होते हैं।***

जो व्यक्ति क्षणिक भोगों के भोग में लीन होता है, उसे क्षणिक   
प्रतिकूल संयोग मिलते हैं। जो व्यक्ति क्षणिक भोगों का त्याग करता है,   
उसे क्षणिक अनुकूल संयोग मिलते हैं। जो व्यक्ति आत्मा के नित्य स्वरूप   
में लीन होता है, वह नित्य मोक्ष पाता है।

⁕ **गाथा १५२** ⁕

**परमदुम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि।**

**तं सव्वं बालतवं बालवदं बेंति सव्वण्हू॥ १५२॥**

***परमार्थ में अस्थित जो जीव तप करता है और व्रत धारण   
करता है; उसके उन सभी तप और व्रतों को सर्वज्ञदेव बालतप और   
बालव्रत कहते हैं।***

करोड़ों वर्षों की बाह्य तपश्चर्या की तुलना में एक समय के लिए किया   
गया चैतन्य तत्त्व का गहन चिंतन बेहतर है।

जैसे बैल की आँखों पर पट्टी बाँधकर तिल को कुचलने के लिए उसे   
तेल की मशीन के चारों ओर पूरे दिन भर गोल−गोल घुमाया जाता है। जब   
आँखों से पट्टी हटा दी जाती है, तो वह पाता है कि वह उसी स्थान पर है। वह   
पूरे दिन भर घूमने के बावज़ूद भी कहीं पहुँचता नहीं है। गति के साथ–साथ   
सच्ची दिशा का होना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इसीतरह बाह्य तपश्चर्या   
करने पर भी आत्मानुभूति की प्राप्ति के लक्ष्य के बिना मुक्ति नहीं पाता है।

⁕ **गाथा १५३** ⁕

**वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।**

**परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति॥ १५३॥**

***जो परमार्थ से बाह्य हैं; वे व्रत और नियमों को धारण करते हुए   
भी, शील और तप को करते हुए भी निर्वाण को प्राप्त नहीं करते।***

उदाहरण के लिए, जब कोई पायलट एक हज़ार किलोमीटर प्रति घण्टे   
की रफ़्तार से यात्रा करता है। यह हो सकता है कि उसे अपने गंतव्य स्थान पर   
जल्द से जल्द पहुँचने के लिए यह खबर अच्छी हो। साथ ही, यदि विमान   
का दिशासूचक यंत्र खराब हो जाए, तो व्यक्ति को यह एहसास होता है   
कि **यात्रा की गति की तुलना में दिशा का ज्ञान अधिक महत्वपूर्ण है।**

⁕ **गाथा १५४** ⁕

**परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।**

**संसारगमणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता॥ १५४॥**

***जो जीव परमार्थ से बाह्य हैं, वे मोक्ष के वास्तविक हेतु को न   
जानते हुए अज्ञान से संसार गमन का हेतु होने पर भी मोक्ष का हेतु   
समझकर पुण्य को चाहते हैं।***

किसी एक व्यक्ति ने टैक्सी ड्राइवर से अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने   
का किराया पूछा। टैक्सी ड्राइवर ने 200 रुपये बताया। उस व्यक्ति को यह   
महंगा लगा, इसलिए उसने टैक्सी के बजाय पैदल चलना शुरू कर दिया।   
बाद में आगे चलकर उसने दूसरी टैक्सी को फिर किराया पूछा, तो उसने   
400 रुपये बताया। वह तो चौंक गया, क्योंकि उसे लगा कि अब तो   
किराया कम हो गया होगा। जब उसने टैक्सी ड्राइवर से पूछताछ की, तो   
ड्राइवर ने बताया कि अब अधिक किराया लगेगा, क्योंकि वह विपरीत   
दिशा की ओर पैदल चला है, इसलिए दूरी दुगुनी हो गई है।

**बाह्य व्रत–तप से चैतन्य दिशा अधिक महत्वपूर्ण है।**

⁕ **गाथा १५५** ⁕

**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।**

**रागादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो॥ १५५॥**

***जीवादि पदार्थों का श्रद्धान सम्यक्त्व है, उन्हीं जीवादि पदार्थों   
का अधिगम (जानना) ज्ञान है और रागादि का त्याग चारित्र है –   
यही मोक्ष का मार्ग है।***

रॉबर्ट के दरवाज़े पर एक अजनबी दस्तक देता है। रॉबर्ट उससे पूछता   
है वह किसे खोज रहा है। वह अजनबी जवाब देता है, 'रॉबर्ट'। तो रॉबर्ट   
कहता है कि वह भी स्वयं को खोज रहा है और अभी तक स्वयं को खोज नहीं   
पाया है। **सभी अज्ञानी दूसरों की खोज कर रहे हैं, लेकिन अपनी नहीं।**

⁕ **गाथा १५६** ⁕

**मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।**

**परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥ १५६॥**

***विद्वान लोग निश्चयनय के विषयभूत निज भगवान आत्मारूप   
परम–अर्थ को छोड़कर व्यवहार में प्रवर्तते हैं; किन्तु कर्मों का***

***नाश तो निज भगवान आत्मारूप परम−अर्थ का आश्रय लेनेवाले   
यतीश्वरों (मुनिराजों) के ही कहा गया है।***

प्रत्येक अज्ञानी सफेद कपड़े और जूते पहनकर ऐसा सोचता है कि   
वह शुद्ध है। किन्तु यह एक भ्रम है। **सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना बाह्य   
तपश्चर्या मुक्ति की प्राप्ति हेतु उपयोगी नहीं है।**

⁕ **गाथा १५७–१५८–१५९** ⁕

**वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।**

**मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं॥ १५७॥**

**वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।**

**अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं॥ १५८॥**

**वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।**

**कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं॥ १५९॥**

***जिसप्रकार कपड़े की सफेदी मैल के मिलने से नष्ट हो जाती   
है, तिरोभूत हो जाती है; उसीप्रकार मिथ्यात्वरूपी मैल से लिप्त   
होने पर सम्यक्त्व तिरोहित हो जाता है – ऐसा जानना चाहिए।   
जिसप्रकार कपड़े की सफेदी मैल के मिलने से नष्ट हो जाती है,   
तिरोभूत हो जाती है; उसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल से लिप्त होने पर   
ज्ञान तिरोभूत हो जाता है – ऐसा जानना चाहिए। जिसप्रकार कपड़े   
की सफेदी मैल के मिलने से नष्ट हो जाती है, तिरोभूत हो जाती है;   
उसी प्रकार कषायरूपी मैल से लिप्त होने पर चारित्र तिरोभूत हो   
जाता है – ऐसा जानना चाहिए।***

अंधेरा वस्तु को देखने में बाधक बनता है। **मिथ्यादर्शन की मलिनता   
सम्यग्दर्शन को ढँक लेती है।**

बादल सूरज को ढँक लेते हैं और ऐसा लगता है जैसे रोशनी चली   
गई हो। **मिथ्याज्ञान की मलिनता सम्यग्ज्ञान को ढँक लेती है।**

बड़े हीरे से भरा बॉक्स हीरे की चमक को व्यक्त होने में बाधक बनता   
है। **राग−द्वेष के भाव सम्यक्चारित्र को ढँकते हैं।**

जब हमारे कपड़े गंदे हो जाते हैं, तो हम उन्हें फेंक नहीं देते हैं,   
क्योंकि हम जानते हैं और मानते हैं कि उन्हें धोया जा सकता है। इसीतरह,   
**आत्मा की मलिनता को दूर किया जा सकता है, अतः हमें किसी भी   
आत्मा को हीन नहीं देखना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक आत्मा में मुक्ति   
की प्राप्ति का सामर्थ्य है।**

⁕ **गाथा १६०** ⁕

**सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण नियेणावच्छण्णो।**

**संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं॥ १६०॥**

***यद्यपि वह आत्मा सबको देखने−जानने के स्वभाववाला है;   
तथापि अपने कर्ममल से लिप्त होता हुआ, संसार को प्राप्त होता   
हुआ; सर्वप्रकार से सबको नहीं जानता।***

मूंगफली में तेल निकलने की क्षमता है और फिर उसका तलने के   
लिए उपयोग किया जा सकता है। परन्तु मूंगफली को ही तलने के लिए   
इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।

आइंस्टीन ने मरते समय कहा था कि अगर उनका पुनर्जन्म होता है,   
तो वे अपनी आत्मा को खोजना चाहेंगे, जिसने सारी खोज की।

उसीतरह, **प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। शक्ति   
होने पर भी वर्तमान में कर्म के आवरण में अव्यक्त है, इसलिए   
आनन्द की प्राप्ति नहीं हो रही है।**

⁕ **गाथा १६१–१६२–१६३** ⁕

**सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।**

**तरसोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो॥ १६१॥**

**णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।**

**तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो॥ १६२॥**

**चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहियं।**

**तरसोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो॥ १६३॥**

***सम्यक्त्व का प्रतिबंधक मिथ्यात्व है – ऐसा जिनवरों ने कहा   
है। उसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टी होता है; ऐसा जानना चाहिए।   
ज्ञान का प्रतिबंधक अज्ञान है – ऐसा जिनवरों ने कहा है। उसके   
उदय से जीव अज्ञानी होता है; ऐसा जानना चहिए। चारित्र की   
प्रतिबंधक कषाय है – ऐसा जिनवरों ने कहा है। उसके उदय से जीव   
अचारित्रवान होता है; ऐसा जानना चाहिए।***

जैसे हम पर्दे एवं दरवाजे का आवरण बनाकर सूर्य की किरणों को   
हम तक नहीं पहुँचने देते हैं। इसीप्रकार, मिथ्यादर्शन आत्मा में सम्यग्दर्शन   
प्रकट होने में बाधक बनता है। सूरज की पूरी क्षमता हम तक पहुँचने में   
बादल बाधक बनते हैं। इसीतरह, कर्म आत्मा पर आवरण डालता है और   
सम्यग्ज्ञान में बाधक बनता है। पानी को ढँकने वाली काई की परत झील के   
नीचे साफ एवं शुद्ध पानी को देखने में बाधक बनती है। इसीतरह, कषायें   
सम्यक्चारित्र को रोकती हैं। जब तक चॉकलेट को उसके पैकेट से दूर न   
किया जाए, तब तक वह चॉकलेट को चखने में बाधक बनता है। ऐसे ही   
आत्मा के निर्विकल्प ध्यान में विकल्प बाधक बनते हैं।

**आस्रव अधिकार**

⁕ **गाथा १६४–१६५** ⁕

**मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।**

**बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा॥ १६४॥**

**णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।**

**तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो॥ १६५॥**

***मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग – ये चार आस्रवभाव   
संज्ञ अर्थात् चेतन के विकाररूप भी हैं और असंज्ञ अर्थात् पुद्‌गल के   
विकाररूप भी हैं। जीव में उत्पन्न और अनेक भेदोंवाले संज्ञ आस्रव   
अर्थात् भावास्रव जीव के ही अनन्य परिणाम हैं। असंज्ञ आस्रव   
अर्थात् मिथ्यात्वादि द्रव्यास्रव ज्ञानावरणादि कर्मों के बंधन में कारण   
(निमित्त) होते हैं और उन मिथ्यात्वादि भावों के होने में राग–द्वेष   
करनेवाला जीव कारण (निमित्त) होता है।***

यदि किसी व्यक्ति के पास 5 अंकों की राशि 99999 रुपये का ऋण   
है, उसे 4 अंक (9999) करने के लिए 90000 चुकाना होगा और उसे   
अपने ऋण को 3 अंकों ( 999 ) तक कम करने के लिए 9000 चुकाना   
होगा और 2 अंक (99) बनाने के लिए 900 चुकाना होगा और 1 अंक   
(9) बनाने के लिए 90 चुकाना होगा।

इसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग कर्म के   
आस्रव के 5 कारण हैं। ये सभी समानरूप से हानिकारक नहीं हैं। उपरोक्त   
उदाहरण से समझाने के लिए 99999 में से मिथ्यात्व 90000 के बराबर है।   
अविरति 9000 के बराबर है। प्रमाद 900 के बराबर है। कषाय 90 और   
योग 9 के बराबर है। वे इसी क्रम में क्रमिकरूप से दूर होते हैं।

⁕ **गाथा १६६** ⁕

**णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।**

**संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो॥ १६६ ॥**

***सम्यग्दृष्टी के आस्रव जिसका निमित्त है – ऐसा बंध नहीं होता;   
क्योंकि उसके आस्रवों का निरोध है। नवीन कर्मों को नहीं बाँधता   
हुआ वह सम्यग्दृष्टी सत्ता में रहे हुए पूर्वकर्मों को मात्र जानता है।***

जैसे छेद में से पानी नाव में आता है और उससे नाव भर जाती है। नाविक   
छेद को बंद कर देता है और पानी का आना बंद कर देता है, जिससे नाव डूब   
जाने का खतरा बंद हो जाता है। अब तो उसे नाव में से पानी को सिर्फ खाली   
करना है। इसीतरह, ज्ञानी आत्मानुभूति प्रकट करके कर्मों के आस्रव को रोक   
देते हैं। अब तो भूतकाल में बँधे हुए कर्म उदय में आकर आत्मा से दूर हो जाते हैं।

⁕ **गाथा १६७** ⁕

**भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो।**

**रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि॥ १६७॥**

***जीवकृत रागादि भाव ही नवीन कर्मों का बंध करनेवाले कहे गये   
हैं, रागादि से रहित भाव बंधक नहीं हैं; क्योंकि वे तो मात्र ज्ञायक ही हैं।***

तेल वाली त्वचा रजकणों को खींचती है। इसीप्रकार आत्मा के   
मोह, राग एवं द्वेष के भाव नए कर्मों को बाँधते हैं। बिना तेल वाली त्वचा   
रजकणों को खींचती नहीं है। इसीप्रकार, **मोह, राग एवं द्वेष के भाव   
रहित आत्मा नए कर्मों को बाँधता नहीं है।**

⁕ **गाथा १६८** ⁕

**पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे।**

**जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेदि॥ १६८॥**

***जिसप्रकार पके हुए फल के गिर जाने पर, वह फल फिर उसी   
डंठल पर नहीं बँधता, उसीप्रकार जीव के कर्मभाव के झड़ जाने पर   
फिर वह उदय को प्राप्त नहीं होता।***

जैसे बम फटने एवं नुकसान होने के बाद बम के परमाणुओं का   
अस्तित्व होने पर भी अब दुबारा नया विस्फोट नहीं करता। **ऐसे ही कोई   
विशिष्ट कर्म उदय में आने के बाद वे कार्माण वर्गणायें जगत में होने   
पर भी दुबारा फल नहीं देती हैं।**

⁕ **गाथा १६९** ⁕

**पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।**

**कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स॥ १६९॥**

***उस ज्ञानी के पूर्वबद्ध समस्त प्रत्यय पृथ्वी (मिट्टी) के ढेले के   
समान हैं और वे मात्र कार्माण शरीर के साथ बँधे हुए हैं।***

जैसे गिलास नीचे गिरकर टूट जाने के बाद काँच के परमाणु होने   
पर भी हमें उनमें रुचि नहीं होती। इसीतरह, **ज्ञानी को कर्म बँधे होते हैं,   
लेकिन उन्हें कर्म में रुचि नहीं होती।**

⁕ **गाथा १७०** ⁕

**चउविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं।**

**समए समए जम्हा तेण अबंधो ति णाणी दु॥ १७०॥**

***चार प्रकार के द्रव्यास्रव (द्रव्यप्रत्यय) ज्ञानदर्शन गुणों के द्वारा   
समय–समय पर अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं, इसकारण   
ज्ञानी तो अबंध ही है;***

जैसे दो महिलाएँ एक दुकान पर जाती हैं। एक महिला 5000 रुपये   
में कपड़े खरीदती है। वह रुपये के अपनेपन को कपड़े में बदलती है। वहीं   
दूसरी महिला को रुपये में अपनापन न होने से उसे कपड़े में अपनापन

नहीं होता। **इसीतरह, ज्ञानी को भावकर्म में अपनापन न होने से उन्हें   
द्रव्यकर्म में भी अपनापन नहीं होता।**

⁕ **गाथा १७१** ⁕

**जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।**

**अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो॥ १७१॥**

***क्योंकि ज्ञानगुण जघन्य ज्ञानगुण के कारण फिर भी अन्यरूप से   
परिणमन करता है; इसलिए वह ज्ञानगुण कर्मों का बंधक कहा गया है।***

एक व्यक्ति शादी के रिसेप्शन में दो प्राचीन सिक्कों में से अपना एक   
सिक्का दिखाने लगा। वह सिक्का एक मेहमान से दूसरे मेहमान के पास जाता   
गया और खो गया। सिक्के का मालिक बोला कि अब वह सबकी जेब चेक   
करेगा। एक मेहमान ने उसे अपनी जेब चेक करने से मना कर दिया। तो   
सभी को शक गया कि उसीने सिक्का चुरा लिया है। कुछ समय बाद वेटर   
को बुफे में बर्तन के पीछे से सिक्का मिला। नाराज हुए उस मेहमान ने फिर   
अपनी जेब में से एक ऐसा ही सिक्का निकाला और बोला कि इसके जैसे   
ही दूसरे सिक्के का मालिक मैं हूँ। यदि मैंने यह सिक्का पहले दिखा दिया   
होता, तो सभी सोचते कि 'मैं चोर हूँ'। **इसीतरह ज्ञान की अपूर्ण दशा   
को कर्मबंधन का कारण कहा है।**

⁕ **गाथा १७२** ⁕

**दंसणणाणचरितं जं परिणमदे जहण्णभावेण।**

**णाणी तेण दु बज्झदि पोग्गलकम्मेण विविहे॥ १७२॥**

***क्योंकि उक्त ज्ञानी के दर्शन, ज्ञान और चारित्र जघन्यभाव से   
परिणमित होते हैं; इसलिए ज्ञानी अनेक प्रकार के पुद्‌गलकर्म से बँधता है।***

एक महिला शादी के लिए तैयार हो रही थी। उसने अपने गले के   
हार को बिस्तर पर छोड़ा और कपड़े बदलने के लिए बाथरूम में गई। कमरे

में खेल रहे कुछ बच्चों ने हार को तकिये से ढँक दिया। जब वह महिला   
वापस आई, तो उसे अपना हार वहाँ नहीं दिखाई दिया। वह ऐसा सोचकर   
कर्म बाँधती है कि किसी ने उसका हार चुरा लिया है। यद्यपि थोड़ी देर बाद   
उसे हार मिल जाता है। **इसीतरह ज्ञान की अपूर्ण दशा को कर्मबंधन   
का कारण कहा है।**

⁕ **गाथा १७३–१७४–१७५–१७६** ⁕

**सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया अत्थि सम्मदिट्ठिस्स।**

**उवओगप्पाओगं बंधते कम्मभावेण॥ १७३॥**

**होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा।**

**सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं॥ १७४॥**

**संता दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेह पुरिसस्स।**

**बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स॥ १७५॥**

**एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो।**

**आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा॥ १७६॥**

***सम्यग्दृष्टीजीव के पूर्वबद्ध समस्त प्रत्यय (द्रव्यास्रव) सत्तारूप   
में विद्यमान हैं। वे उपयोग के प्रयोगानुसार कर्मभाव (रागादि) के   
द्वारा नवीन बंध करते हैं। निरुपभोग्य होकर भी वे प्रत्यय जिसप्रकार   
उपभोग्य होते हैं; उसीप्रकार सात−आठ प्रकार के ज्ञानावरणादि कर्मों   
को बाँधते हैं। जिसप्रकार जगत में बाल स्त्री पुरुष के लिए निरुपभोग्य   
है और तरुण स्त्री (युवती) पुरुष को बाँध लेती है; उसीप्रकार सत्ता   
में पड़े हुए वे कर्म निरुपभोग्य हैं और उपभोग्य होने पर, उदय में आने   
पर बंधन करते हैं। इसकारण से सम्यग्दृष्टी को अबंधक कहा है;   
क्योंकि आस्रवभाव के अभाव में प्रत्ययों को बंधक नहीं कहा है।***

जैसे श्रीखंड बनाने के लिए एक कप दूध से दही बनाया गया।   
दही बनने के बाद श्रीखंड बन भी सकता है और नहीं भी बन सकता है।   
अबाधाकाल के दौरान कर्म फल नहीं देता है। **इसीतरह, कर्म के उदय के   
बाद आत्मा को नए कर्म का बंध हो भी सकता है और नहीं भी हो   
सकता है। अज्ञानी नए कर्मों को बाँधता है, जबकि ज्ञानी नए कर्मों   
को नहीं बाँधते हैं।**

एक आदमी दूसरे आदमी के चेहरे के प्रति घृणा करता है। यद्यपि   
उसी आदमी के पास एक बदसूरत चेहरे वाला कुत्ता है, लेकिन फिर भी   
वह उसे प्यार करता है। **बाह्य संयोग विकारीभावों के कारण नहीं हैं।   
यदि आत्मा पुरुषार्थ करे, तो उसे कर्मबंधन नहीं होता है।**

जैसे थर्मामीटर केवल तापमान को मापता है, लेकिन वह बुखार का   
कारण नहीं है। **इसीतरह, सभी संयोग मोह, राग एवं द्वेष के कारण नहीं   
हैं, वे तो सिर्फ आत्मा में पड़ी मलिन वृत्ति को दिखाते हैं।**

⁕ **गाथा १७७−१७८** ⁕

**रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।**

**तम्हा आसवभावेण विणा हेदू न पच्चया होंति॥ १७७॥**

**हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।**

**तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति॥ १७८॥**

***राग−द्वेष−मोहरूप आस्रवभाव सम्यग्दृष्टियों के नहीं होते;   
इसलिए उन्हें आस्रवभाव के बिना द्रव्यप्रत्यय कर्मबंध के कारण नहीं   
होते। मिथ्यात्वादि चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के कर्मों के बंध   
के कारण कहे गये हैं और उनके भी कारण जीव के रागादि भाव हैं।***

जैसे अमेरिका से भारत में किसी मेहमान के आने का इंतज़ार है।   
यदि वह मेहमान अमेरिका से निकला ही न हो, तो उस मेहमान को भारत

में एयरपोर्ट पर लेने के लिए जाना व्यर्थ है। **ऐसे ही यदि कर्म का आस्रव   
न हो, तो बंध भी नहीं होता है।** यदि गर्भधारण न हुआ हो, तो बच्चे   
का जन्म नहीं होता है। **ऐसे ही यदि कर्म का आस्रव न हो, तो बंध भी   
नहीं होता है।**

⁕ **गाथा १७९−१८०** ⁕

**जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।**

**मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो॥ १७९॥**

**तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।**

**बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा॥ १८०॥**

***जिसप्रकार पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार जठराग्नि के   
संयोग से अनेकप्रकार मांस, चर्बी, रुधिर आदि रूप परिणमित होता   
है; उसीप्रकार शुद्धनय से च्युत ज्ञानी जीवों के पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव   
अनेक प्रकार के कर्म बाँधते हैं।***

अभी तक ऐसी कोई मशीन नहीं खोजी गई है, जो भोजन को मांस,   
चर्बी, रक्त आदि में परिवर्तित करे। सिर्फ मनुष्य का शरीर ही यह कर   
सकता है। **उसीप्रकार सिर्फ आत्मा में ही मोह, राग एवं द्वेष के भाव   
होते हैं, इसलिए आत्मा को ही कर्म बाँधते हैं।** चोर घर में तभी प्रवेश   
करता है जब मालिक सो रहा हो या घर में न हो। **इसीप्रकार कर्म का   
आस्रव एवं बंध तब ही होता है, जब आत्मा स्वयं से अनजान हो या   
स्वरूप में वास करता हो।**

जब शेर सोता है, तब अन्य जानवर आराम करते हैं और जब शेर   
जागता है, तब वे सभी भाग जाते हैं। **स्वरूप की जागृति के बिना   
कर्म आत्मा को बाँधते हैं और आत्मजागृति प्रकट होते ही कर्मों की   
निर्जरा होती है।**

**संवर अधिकार**

⁕ **गाथा १८१−१८२−१८३** ⁕

**उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो।**

**कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो॥ १८१॥**

**अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।**

**उवओगम्हि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि॥ १८२॥**

**एदं दु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स।**

**तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा॥ १८३॥**

***उपयोग में उपयोग है, क्रोधादि में उपयोग नहीं है और क्रोध   
क्रोध में ही है, उपयोग में क्रोध नहीं है। इसीप्रकार आठ प्रकार के   
कर्मों में और नोकर्म में भी उपयोग नहीं है और उपयोग में कर्म व   
नोकर्म नहीं हैं। जब जीव को इसप्रकार का अविपरीत ज्ञान होता है,   
तब यह उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी   
भी भाव को नहीं करता।***

जैसे आँखें बहती नदी को देखती हैं पर भीगती नहीं। आँखें शरीर   
का अंग हैं और हमेशा उससे जुड़ी रहती हैं। **इसीतरह, ज्ञान क्रोध को   
जानता है, लेकिन क्रोधरूप परिणमित नहीं होता। ज्ञान आत्मा का   
अंश है और सदैव उससे जुड़ा रहता है।**

एक बहती नदी के दो किनारों पर दो गाँव बसे हुए हैं। इन गाँवों के   
लोग कभी भी बहते पानी का अंश नहीं हैं। **इसीतरह, राग एवं द्वेष के   
भाव कभी–भी ज्ञान की धारा के अंश नहीं हो सकते।**

मोमबत्ती की लौ से प्रकाश और धुआँ निकलता है। जहाँ प्रकाश है,

वहाँ धुआँ नहीं है और जहाँ धुआँ है, वहाँ प्रकाश नहीं है। दोनों स्वतंत्र हैं।   
**इसीप्रकार ज्ञान और क्रोध आत्मा में उत्पन्न होते हैं। जहाँ ज्ञान है, वहाँ   
क्रोध नहीं है और जहाँ क्रोध है, वहाँ ज्ञान नहीं है। दोनों स्वतंत्र हैं।**

⁕ **गाथा १८४−१८५** ⁕

**जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि।**

**तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं॥ १ ८४॥**

**एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं।**

**अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो॥ १८५॥**

***जिसप्रकार सुवर्ण अग्नि से तप्त होता हुआ भी अपने सुवर्णत्व   
को नहीं छोड़ता; उसीप्रकार ज्ञानी कर्मोदय से तप्त होता हुआ भी   
ज्ञानीपने को नहीं छोड़ता – ज्ञानी ऐसा जानता है और अज्ञानी   
अज्ञानान्धकार से आच्छादित होने से आत्मा के स्वभाव को न   
जानता हुआ राग को ही आत्मा मानता है।***

जैसे पानी गर्म होने पर भी अपने शीतल स्वभाव को छोड़ता नहीं है।   
**ऐसे ही ज्ञानी पूर्वकर्मों के फल को पाता हुआ भी अपने आत्मानुभव   
को छोड़ता नहीं है।**

जैसे एक व्यक्ति की कमीज़ गंदी है, लेकिन वह उसे डिज़ाइन के रूप   
में देखता है और उसे धोने के बारे में सोचता नहीं है। ऐसे ही **अज्ञानी   
मलिन भावयुक्त होने पर भी उसे आत्मा का स्वभाव मानता है और   
उन्हें त्यागने का विचार नहीं करता है।**

⁕ **गाथा १८६** ⁕

**सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।**

**जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि॥ १८६॥**

***शुद्धात्मा को जानता हुआ, अनुभव करता हुआ जीव शुद्धात्मा   
को ही प्राप्त करता है और अशुद्धात्मा को जानता हुआ, अनुभव   
करता हुआ जीव अशुद्धात्मा को ही प्राप्त करता है।***

दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति सोने को जानता है, वह सोने को   
खान में खोजेगा और जो सोने को नहीं जानता है, वह सोचेगा कि सोना   
पत्थर है। जो व्यक्ति पेंसिल को लकड़ी के टुकड़े के रूप में देखता है, वह   
इसे केवल लकड़ी के रूप में उपयोग करता है। हालाँकि, जो व्यक्ति पेंसिल   
को पेंसिल के रूप में देखता है, वह उसका लिखने के लिए उपयोग करता   
है। **उसीतरह, जो जीव आत्मा को शुद्ध अनुभव करता है, वह शुद्ध   
आत्मा को प्राप्त होता है।**

⁕ **गाथा १८७–१८८–१८९** ⁕

**अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोगेसु।**

**दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि॥ १८७॥**

**जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।**

**ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं॥ १८८॥**

**अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ।**

**लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं॥ १८९॥**

***आत्मा को आत्मा के ही द्वारा पुण्य−पाप इन दोनों योगों से   
रोककर दर्शन − ज्ञान में स्थित होता हुआ और अन्य वस्तुओं की   
इच्छा से विरत होता हुआ, जो आत्मा सर्वसंग से रहित होता हुआ,   
अपने आत्मा को आत्मा के द्वारा ध्याता है और कर्म तथा नोकर्म को   
नहीं ध्याता एवं स्वयं चेतयितापन होने से एकत्व का चिन्तवन करता   
है, अनुभव करता है; वह आत्मा, आत्मा को ध्याता हुआ, दर्शन–***

***ज्ञानमय और आनन्दमय होता हुआ अल्पकाल में ही कर्मों से रहित   
आत्मा को प्राप्त करता है।***

सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय के पास अपने और पराये के बीच भेद जानने का   
सामर्थ्य होता है। जैसे गाड़ी, घर, बच्चे, इत्यादि। **इसी ज्ञान का स्व−पर   
भेदविज्ञान के लिए उपयोग करना चाहिए।**

दो अलग−अलग प्लॉट्स को विभाजित करने के लिए बीच में दीवार   
खड़ी की जाती है। जो व्यक्ति दीवार खड़ी करना चाहता हो, उसके भाग   
में ईंटों का होना अनिवार्य है। **ऐसे ही आत्मा एवं परपदार्थों के बीच   
निरंतर भेदविज्ञान करना चाहिए। भेदविज्ञान करने के लिए ज्ञान का   
उपयोग करना चाहिए। ज्ञान आत्मा में विद्यमान होने से आत्मा को   
किसी भी परपदार्थ की आवश्यकता नहीं है।**

जो डॉक्टर गाँठ को दूर करने का प्रयास कर रहा हो, उसे यह जानना   
ज़रूरी है कि गाँठ शरीर का हिस्सा नहीं है और वह गाँठ सहित आसपास   
के व्यर्थ हिस्से को निकाल देता है। **ज्ञानी आत्मा एवं शरीर को उनके   
लक्षण से भेदरूप जानते हैं।**

⁕ **गाथा १९०−१९१−१९२** ⁕

**तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं।**

**मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य॥ १९०॥**

**हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो।**

**आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो॥ १९१ ॥**

**कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो।**

**णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि॥ १९२॥**

***पूर्वकथित मोह − राग−द्वेष रूप आस्रवभावों के हेतु मिथ्यात्व,   
अज्ञान, अविरतभाव और योग – ये चार अध्यवसान हैं − ऐसा   
सर्वदर्शी भगवानों ने कहा है। हेतुओं का अभाव होने से ज्ञानियों   
के नियम से आस्रवभावों का निरोध होता है और आस्रवभावों के   
अभाव से कर्मों का भी निरोध होता है। कर्म के निरोध से नोकर्मों का   
निरोध होता है और नोकर्मों के निरोध से संसार का निरोध होता है।***

जैसे बहुत ठंडी चीजें खाने से सर्दी−जुकाम हो सकता है। यदि ऐसा   
खाना बंद कर दिया जाए, तो सर्दी−जुकाम रुक जाता है। ऐसे ही विकारी   
भावों की उत्पत्ति से कर्मों का आस्रव होता है। **ऐसे ही यदि विकारी   
भावों की उत्पत्ति रुक जाए, तो कर्मों का आस्रव रुक जाता है।**

जैसे किसी व्यक्ति की कमाई रुक जाए, तो वह परिग्रह बढ़ाना भी   
बंद कर देता है। **ऐसे ही विकारी भावों की उत्पत्ति रुक जाने पर कर्मों   
का आस्रव रुक जाता है।**

जैसे आमंत्रण न मिलने पर मेहमान घर पर नहीं आते हैं। **ऐसे ही   
विकारी भाव न होने पर नए कर्म आत्मा को बाँधते नहीं है।**

**निर्जरा अधिकार**

⁕ **गाथा १९३** ⁕

**उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।**

**जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं॥ १९३॥**

***सम्यग्दृष्टी जीव इन्द्रियों के द्वारा चेतन−अचेतन द्रव्यों का जो   
भी उपभोग करता है, वह सभी निर्जरा का निमित्त है।***

महात्मा गांधी जब जेल में अनशन कर रहे थे, तब उन्हें जबरदस्ती   
केसर, बादाम, आदि युक्त दूध पिलाया जाता था। कुछ लोग उनकी   
नकल करते हुए जान−बूझकर जेल में गए, परन्तु उन्हें पिटाई के अतिरिक्त   
और कुछ भी नहीं दिया गया। **ज्ञानी बाह्य वैभव को सुखदायक नहीं   
मानते, अतः वे कर्म नहीं बाँधते। अज्ञानी पौद्गलिक बाह्य वैभव को   
सुखदायक मानते हैं, अतः वे कर्म बाँधते हैं।**

⁕ **गाथा १९४** ⁕

**दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं व दुक्खं वा।**

**तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अध णिज्जरं जादि॥ १९४॥**

***परद्रव्य का उपभोग होने पर सुख अथवा दुःख नियम से उत्पन्न   
होता है। उदय को प्राप्त उन सुख−दुःखों का अनुभव होने के बाद वे   
सुख−दुःख निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं।***

जैसे कोई बिना कुछ जमा किए पैसे निकालता रहे, तो बैंक का खाता   
धीरे−धीरे खाली हो जाएगा। **ऐसे ही आत्मा पुराने कर्मों की निर्जरा करे   
एवं नए कर्मों का बंध न करे, तो सब कर्मों से मुक्त हो जाएगा।**

⁕ **गाथा १९५** ⁕

**जह विसमुवभुंजंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।**

**पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भंजुदि णेव बज्झदे णाणी॥ १९५॥**

***जिसप्रकार वैद्यपुरुष विष को भोगता अर्थात् खाता हुआ भी   
मरण को प्राप्त नहीं होता; उसीप्रकार ज्ञानी पुरुष पुद्‌गलकर्म के   
उदय को भोगता हुआ भी बँधता नहीं है।***

एक डॉक्टर को एक संक्रामक रोगी को देखने की अनुमति है, क्योंकि   
वह उसे जानता हुआ यथायोग्य सावधानी बर्तता है। **पूर्वकृत कर्मोदय   
के निमित्त से प्राप्त भोगों को भोगते होने पर भी ज्ञानी नए कर्मों को   
नहीं बाँधते हैं। क्योंकि वे जानते एवं मानते हैं कि पौद्गलिक पदार्थ   
सुखदायक नहीं हैं।**

⁕ **गाथा १९६** ⁕

**जह मज्जं पिबमाणो अरदीभावेण मज्जदि ण पुरिसो।**

**दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव॥ १९६॥**

***जिसप्रकार कोई पुरुष मदिरा को अरतिभाव (अप्रीति) से पीता   
हुआ मतवाला नहीं होता; उसीप्रकार ज्ञानी भी द्रव्य के उपभोग के   
प्रति अरत वर्तता हुआ बंध को प्राप्त नहीं होता।***

जैसे फांसी की सजा पाने वाले को स्वादिष्ट भोजन न तो अच्छा   
लगता है और न ही वह उसे भोगता है। **ऐसे ही ज्ञानी को बाह्य वैभव में   
अरुचि होने से वे कर्मों से बँधते नहीं हैं।**

⁕ **गाथा १९७** ⁕

**सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोई।**

**पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि॥ १९७॥**

***जिसप्रकार किसी व्यक्ति के किसी प्रकरण की चेष्टा होने पर भी   
वह प्राकरणिक नहीं होता और चेष्टा से रहित व्यक्ति प्राकरणिक होता   
है; उसीप्रकार कोई व्यक्ति विषयों का सेवन करता हुआ भी सेवक नहीं   
होता है और कोई व्यक्ति सेवन नहीं करता हुआ भी सेवक होता है।***

किसी एक सड़क पर कोई एक भिखारी कई सालों से भीख मांगता   
था। वह ऐसा मानने लगा कि उस सड़क पर भीख मांगने का उसका अधिकार   
है। जब उसकी बेटी की शादी हुई, तो उसने वह सड़क अपने दामाद को   
भेंट के रूप में दी। **अज्ञानी मानता है कि उसके पास जो कुछ है, वह   
उसका मालिक है। ज्ञानी मानते हैं कि कोई भी परपदार्थ मेरा नहीं है।**

⁕ **गाथा १९८** ⁕

**उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं।**

**ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को॥ १९८॥**

***जिनेन्द्र भगवान ने कर्मों के उदय का विपाक (फल) अनेक प्रकार   
का कहा है; किन्तु वे मेरे स्वभाव नहीं हैं; मैं तो एक ज्ञायकभाव ही हूँ।***

जैसे शेयरबाज़ार में रोजाना उतार−चढ़ाव होता रहता है। जिस व्यक्ति   
ने शेयरबाज़ार में अपना कुछ भी धन निवेश नहीं किया, उस व्यक्ति को   
स्टॉक−सेंसेक्स में होने वाला उतार−चढ़ाव प्रभावित नहीं करता है। **ऐसे   
ही संयोग एवं संयोगीभाव प्रतिसमय पलटते रहते हैं। परन्तु वे ज्ञानी   
को प्रभावित नहीं करते हैं, क्योंकि वे मानते हैं की ज्ञान परम धन है,   
जिसे संयोग एवं संयोगीभावों में निवेश नहीं किया जा सकता।**

⁕ **गाथा १९९** ⁕

**पोग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो।**

**ण दु एस मज्ज भावो जाणगभावो हु अहमेक्को॥ १९९॥**

***राग पुद्‌गलकर्म है, उसका विपाकरूप उदय मेरा नहीं है;   
क्योंकि मैं तो एक ज्ञायकभाव ही हूँ।***

जैसे गले में जमा हुआ कफ़ बाह्य पदार्थ है। बुद्धिमान व्यक्ति जानता   
है कि वह उसके शरीर का हिस्सा नहीं है और वह उसे निकाल देता है।   
**ऐसे ही मोह, राग एवं द्वेष आत्मा की मलिनता है। ज्ञानी मानते हैं कि   
ये भाव आत्मा के नहीं हैं और वे उनका त्याग कर देते हैं।**

⁕ **गाथा २००** ⁕

**एवं सम्माद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।**

**उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो॥ २००॥**

***इसप्रकार सम्यग्दृष्टी अपने आत्मा को ज्ञायकस्वभाव जानता   
है और तत्त्व (वस्तु के वास्तविक स्वरूप) को जानता हुआ कर्म के   
विपाकरूप उदय को छोड़ता है।***

जैसे फैक्टरी के कर्मचारियों के आसपास एक निरीक्षक होता है,   
जिसकी तनख्वाह कर्मचारियों से अधिक होती है। मैनेजर की तनख्वाह तो   
निरीक्षक से भी अधिक होती है। **ऐसे ही आत्मा परपदार्थों को जानता   
है, ज्ञानी आत्मा को जानता है। क्योंकि स्वयं को जानना ही आत्मा   
की महानता है। आत्मज्ञानी नए कर्मों को नहीं बाँधते हैं।**

⁕ **गाथा २०१−२०२** ⁕

**परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।**

**ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि॥ २०१॥**

**अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।**

**कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो॥ २०२॥**

***जिन जीवों के परमाणुमात्र (लेशमात्र) भी रागादि वर्तते हैं,   
वे जीव समस्त आगम के पाठी होकर भी आत्मा को नहीं जानते।   
आत्मा को नहीं जाननेवाले वे लोग अनात्मा को भी नहीं जानते।   
इसप्रकार जो जीव और अजीव (आत्मा और अनात्मा) दोनों को ही   
नहीं जानते; वे सम्यग्दृष्टी कैसे हो सकते हैं ?***

जैसे एक लड़के को नींबू खरीदने भेजा गया। वह संतरा खरीदकर वापस   
लौटता है। इससे सिद्ध होता है कि उस लड़के को नींबू या संतरा, इन दो में   
से किसी का भी ज्ञान नहीं है। यदि उस लड़के को इनमें से किसी एक का   
भी ज्ञान होता, तो वह सही चीज लाता। ऐसे ही **जो व्यक्ति निजात्मा को   
नहीं जानता, वह परद्रव्य के स्वभाव को भी नहीं जानता। यदि वह   
आत्मा के स्वभाव को जानता, तो वह मानता कि मैं आत्मा हूँ। यदि   
वह परद्रव्य के स्वभाव को जानता, वह मानता कि परद्रव्य मेरे नहीं हैं।**

जैसे सिर्फ फलों के चित्र देखनेमात्र से तृप्ति नहीं होती है, ऐसे ही   
**केवल आत्मा के बारे में शास्त्रों को पढ़नेमात्र से जीव को आत्मानुभूति   
नहीं होती है।**

⁕ **गाथा २०३** ⁕

**आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।**

**थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण॥ २०३॥**

***हे भव्यजीवों! आत्मा में अपदभूत द्रव्य−भावों को छोड़कर   
निश्चित, स्थिर एवं एकरूप तथा स्वभावरूप से उपलब्ध प्रत्यक्ष   
अनुभवगोचर इस ज्ञानभाव को जैसा का तैसा ग्रहण करो; क्योंकि   
यही तुम्हारा पद है।***

जैसे नींबू अपने स्थान से शक्कर के निकट आने पर भी वह खट्टे से   
मीठे में रूपांतरित नहीं हो जाता। ऐसे ही धन अपने स्थान से जीव के निकट   
आने पर भी वह चैतन्यमय नहीं हो जाता। **जड़ पदार्थ आत्मा के अत्यंत**

**निकट आने पर भी उनका स्वभाव वैसा ही रहता है और आत्मा में   
कुछ भी परिवर्तन नहीं आता।**

⁕ **गाथा २०४** ⁕

**आभिणिसुदोधिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं।**

**सो ऐसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि॥ २०४॥**

***मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान   
− यह एक ही पद है; क्योंकि ज्ञान के समस्त भेद ज्ञान ही हैं। इसप्रकार   
यह सामान्य ज्ञानपद ही परमार्थ है, जिसे प्राप्त करके आत्मा निर्वाण   
को प्राप्त होता है।***

जैसे मीठा, खट्टा और कड़वा, ये पुद्‌गल द्रव्य के रस गुण की पर्यायें   
हैं। ऐसे ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान,   
ये जीव के ज्ञान गुण की पाँच पर्यायें हैं।

⁕ **गाथा २०५** ⁕

**णाणगुणेण विहीणा एदं तु पदं बहु वि ण लहंते।**

**तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं॥ २०५॥**

***ज्ञानगुण (आत्मानुभव) से रहित बहुत से लोग अनेकप्रकार के   
क्रियाकाण्ड करते हुए भी इस ज्ञानस्वरूप पद (आत्मा) को प्राप्त   
नहीं कर पाते; इसलिए हे भव्यजीवों! यदि तुम कर्म से पूर्ण मुक्ति   
चाहते हो तो इस नियत ज्ञान को ग्रहण करो।***

शक्कर से भरी बोरी को खाली करने के बाद उसे उल्टा करके चखने   
पर उसमें से जो अभी मीठा स्वाद आता है, वह स्वाद शक्कर का है। **व्यक्ति   
के पास जो भी ज्ञान है, वह शरीर का नहीं है, बल्कि आत्मा का है,   
ऐसा समझना चाहिए।**

⁕ **गाथा २०६** ⁕

**एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।**

**एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥ २०६॥**

***हे भव्यप्राणी ! तू इस ज्ञानपद को प्राप्त करके इसमें ही लीन हो   
जा, इसमें ही निरन्तर सन्तुष्ट रह और इसमें ही पूर्णतः तृप्त हो जा;   
इससे ही तुझे उत्तम सुख (अतीन्द्रिय − सुख) की प्राप्ति होगी।***

राजसी वैभव पर उपन्यास लिखने वाले किसी एक लेखक का   
पत्रकारों द्वारा इंटरव्यू लिया जा रहा था। इंटरव्यू में बात असली राजा एवं   
रानी पर होने लगती है। लेखक उन्हें कहता है कि वास्तविकता में वापस   
लौट आईए। हम मंदिर जाते हैं और कुछ समय के लिए प्रवचन सुनते हैं।   
व्यक्ति का सांसारिक जीवन एक नाटक है और **आत्मा वास्तविकता है   
और नित्य है।** अपने मिथ्यात्व के कारण जीव को लगता है कि सांसारिक   
जीवन वास्तविकता है। **प्रत्येक व्यक्ति को सदैव निज चैतन्य में ही   
लीन रहना चाहिए। तभी उसे नित्य सुख की प्राप्ति हो सकती है।**

⁕ **गाथा २०७** ⁕

**को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।**

**अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो॥ २०७॥**

***अपने आत्मा को ही नियम से अपना परिग्रह जानता हुआ   
कौन−सा ज्ञानी यह कहेगा कि यह परद्रव्य मेरा द्रव्य है ?***

जैसे कोई व्यक्ति किसी धार्मिक स्थल के बाहर अपने जूते और बाकी   
जूतों के साथ उतारता है। जब वह बाहर वापस आता है तो उसे अपने   
जूते मिलने के बाद किसी पराये के जूते में कोई रुचि नहीं है, क्योंकि   
वह मानता है कि बाकी जूते उसके नहीं हैं। **ऐसे ही आत्मानुभूति होने   
पर ज्ञानी मानते हैं कि निजात्मा के अतिरिक्त कुछ भी उनका नहीं है।**

⁕ **गाथा २०८** ⁕

**मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।**

**णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ॥ २०८॥**

***यदि परद्रव्यरूप परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवत्व को प्राप्त हो   
जाऊँ। चूँकि मैं तो ज्ञाता ही हूँ; इसलिए परद्रव्यरूप परिग्रह मेरा नहीं है।***

एक अंधेरे कमरे में एक दीया जलाने पर कुर्सी प्रकाशित होती है।   
यदि कुर्सी टूट जाए तो दीये की रोशनी बुझ नहीं जाती। **ऐसे ही आत्मा   
शरीरादि पुद्‌गल द्रव्यों को जानता है। यदि वे द्रव्य नष्ट हो जाएँ, तो   
आत्मा और आत्मा का ज्ञान नष्ट नहीं हो जाता। जो कुछ भी नष्ट हो   
जाता है, वह मेरा नहीं है।**

⁕ **गाथा २०९** ⁕

**छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।**

**जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ॥ २०९॥**

***यह परद्रव्यरूप परिग्रह छिद जाये, भिद जाये, कोई इसे ले   
जाये अथवा नष्ट हो जाये, प्रलय को प्राप्त हो जाये; अधिक क्या   
कहें − चाहे जहाँ चला जाये; − इससे मुझे क्या ? क्योंकि यह   
परिग्रह वास्तव में मेरा है ही नहीं।***

जैसे कमरे के बीच में एक दर्पण रखा हो, तो उसमें कोई विशिष्ट   
दीवार प्रतिबिम्बित होती है। यदि दर्पण को घुमाया जाए, तो उस दर्पण   
में कमरे की चारों दीवारें प्रतिबिम्बित होंगी। फिर भी दर्पण तो वही रहता   
है। **ऐसे ही अगले भव में यह वर्तमान मनुष्य देह आत्मा के ज्ञान में   
प्रतिबिम्बित नहीं होगा। वहाँ देव, तिर्यंच, नारकी या अन्य मनुष्य देह   
प्रतिबिम्बित होगा। फिर भी ज्ञान दर्पण तो वही रहता है। वह देह के   
नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता है।**

⁕ **गाथा २१०** ⁕

**अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं।**

**अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥ २१०॥**

***अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पुण्यरूप धर्म को   
नहीं चाहता; इसलिए वह पुण्यरूप धर्म का परिग्रही नहीं है; किन्तु   
उसका ज्ञायक ही है।***

स्वादिष्ट मिठाई खाने वाले व्यक्ति का चित्त किन्हीं और इच्छाओं   
की ओर जाता हो, तो उसे मिठाई का मजा नहीं आता है। **ज्ञानी को पुण्य   
की कोई चाह नहीं है, वे तो सिर्फ ज्ञाता हैं।**

⁕ **गाथा २११** ⁕

**अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं।**

**अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥ २११॥**

***अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पापरूप अधर्म   
को नहीं चाहता; इसलिए वह पापरूप अधर्म का परिग्रही नहीं है;   
किन्तु उसका ज्ञायक ही है।***

एक व्यक्ति पूछता है, “ I WANT HAPPINESS ” और “मैं सुख को   
कैसे प्राप्त करूं?” **ज्ञानी उसे कहते हैं कि प्रथम दो शब्दों को दूर कर   
दो। 'I' और 'WANT' − 'मैं' और 'चाहत'। क्योंकि 'मैं' का अर्थ   
अहंकार और 'चाहना' का अर्थ इच्छा है। '1' और 'WANT’ छूटते   
ही ‘HAPPINESS' (सुख) सहज ही प्रकट होगा।**

सुख चाहने वाले को दुःख मिलता है। दुःख चाहने वाले को भी दुःख   
ही मिलता है। **इच्छा ही दुःख का कारण है। समस्त इच्छाओं से मुक्त   
आत्मा सुखी है।**

⁕ **गाथा २१२** ⁕

**अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे असणं।**

**अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि॥ २१२॥**

***अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी भोजन को नहीं   
चाहता है; इसलिए वह भोजन का परिग्रही नहीं है; किन्तु उसका   
ज्ञायक ही है।***

यदि पड़ोसी के घर में आग लगे, तो व्यक्ति उस आग को बुझाने   
जाता है, क्योंकि वह उसके अपने घर में फैल सकती है। **ज्ञानी मानते हैं   
कि वे एक आत्मा है और शरीर उनका पड़ोसी है। जब शरीर को भूख   
लगती है, तब ज्ञानी को शरीर को भोजन देने का भाव उत्पन्न होता   
है। यदि शरीर को भोजन न दिया जाए, तो विकल्प एवं दुःख होता   
है। व्यक्ति को जीने के लिए तो खाना चाहिए, परन्तु खाने के लिए   
नहीं जीना चाहिए।**

⁕ **गाथा २१३** ⁕

**अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे पाणं।**

**अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि॥ २१३॥**

***अनिच्छुक को अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पेय को नहीं चाहता;   
इसलिए वह पेय का परिग्रही नहीं है; किन्तु उसका ज्ञायक ही है।***

जैसे गंगा नदी हिमालय से बंगाल की खाड़ी की ओर बहती है।   
अपने महल में बैठा राजा जानता है कि गंगा नदी बह रही है, लेकिन गंगा   
नदी से उसका कोई संबंध नहीं है। **ऐसे ही जब ज्ञानी पानी पीते हैं, तो   
उन्हें आत्मा और देह की क्रिया के बीच न्यारेपन का अनुभव होता   
है। वे सिर्फ ज्ञाता हैं।**

⁕ **गाथा २१४** ⁕

**एमादिए द विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी।**

**जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ॥ २१४॥**

***इसीप्रकार और भी अनेकप्रकार के सभी भावों को ज्ञानी   
नहीं चाहता; क्योंकि वह तो सभी भावों से निरालम्ब एवं निश्चित   
ज्ञायकभाव ही है।***

बाह्य में सुख की खोज करना भ्रम है। जैसे क्षितिज को देखकर कोई   
ऐसा मान ले कि आगे जाकर आकाश और जमीन दोनों मिल जाएंगे।   
भोगों के पीछे भागते समय भी ऐसा ही भ्रम बना रहता है। जैसे ही उसके   
पास जाओ, बुलबुला फट जाता है। **नित्य सुख को पाने के लिए अंतर   
में खोज करना महत्वपूर्ण है।**

विमान ऐसे यात्रियों से भरे होते हैं, जो मानते हैं कि नई जगह जाकर   
उन्हें सुख मिलेगा। वे जहाँ सच्चा सुख है, वहाँ देखते नहीं और बिना रुके   
ही पृथ्वी के चारों ओर घूमते रहते हैं। **नित्य सुख को पाने के लिए   
भीतर में यात्रा करनी चाहिए। ज्ञानी जानते एवं मानते हैं कि सच्चा   
सुख निजात्मा में ही है।**

⁕ **गाथा २१५** ⁕

**उप्पण्णोदय भोगो वियोगबुद्धीए तस्स सो णिच्चं।**

**कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी॥ २१५॥**

***जो वर्तमान में उत्पन्न उदय का भोग है, वह ज्ञानी के सदा ही वियोग−  
बुद्धिपूर्वक होता है और ज्ञानी आगामी उदय की वांछा नहीं करता।***

एक व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी संत के पास जाता है।   
वह संत को वादा करता है कि उसे जब भी कुछ मिलेगा, तो वह उसे

गुरुदक्षिणा के रूप में अर्पण करेगा। वह ज्ञान प्राप्त करके चला जाता है।   
रास्ते में वह किसी एक राजा से मिलता है और उनकी मदद करता है।   
राजा उससे पूछते हैं कि वह उसकी मदद के बदले में क्या चाहता है ?   
वह बोला कि उसे राजमहल चाहिए। हालाँकि, उसे महल में रुचि नहीं   
है, क्योंकि उसे जो मिला है, वह संत को देना है। **ज्ञानी जानते हैं कि   
सभी भौतिक पदार्थ क्षणिक हैं और आत्मा ही नित्य है। इसलिए वे   
परिग्रहों से निर्मोही रहते हैं।**

⁕ **गाथा २१६** ⁕

**जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभयं।**

**तं जाणगो दु णाणी उभयं पि ण कंखदि कयावि॥ २१६॥**

***वेदन करनेवाला भाव और वेदन में आनेवाला भाव − दोनों   
ही समय−समय पर नष्ट हो जाते हैं। इसप्रकार जाननेवाला ज्ञानी उन   
दोनों भावों को कभी भी नहीं चाहता।***

नदी निरंतर बहती रहती है। बहता पानी उसी स्थान पर वापस लौट   
नहीं सकता। आप अपने पैरों को एक ही नदी में रख सकते हैं, लेकिन   
एक ही पानी में नहीं। **ज्ञानी विकल्पों के बहते प्रवाह में अपनापन नहीं   
करते हैं, वे स्वयं को नित्य शुद्धात्मा ही मानते हैं।**

⁕ **गाथा २१७** ⁕

**बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।**

**संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो॥ २१७॥**

***बंध और उपभोग के निमित्तभूत संसारसंबंधी और देहसंबंधी   
अध्यवसान के उदयों में ज्ञानी को राग उत्पन्न नहीं होता।***

जैसे आग को छूने से जल जाने पर हम आग को दुबारा नहीं छूते हैं।   
**ऐसे ही ज्ञानी समझते हैं कि विकल्प दुःख के कारण हैं, अतः उनमें   
एकत्व नहीं करते हैं।**

⁕ **गाथा २१८−२१९** ⁕

**णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।**

**णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममझे जहा कणयं॥२१८॥**

**अण्णाणी पुणं रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।**

**लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं॥ २१९॥**

***जिसप्रकार कीचड़ में पड़ा हुआ भी सोना कीचड़ से लिप्त नहीं   
होता; उसीप्रकार सर्व द्रव्यों के प्रति राग छोड़नेवाला ज्ञानी कर्मों   
के मध्य में रहा हुआ भी कर्मरज से लिप्त नहीं होता। जिसप्रकार   
कीचड़ में पड़ा हुआ लोहा कीचड़ से लिप्त हो जाता है; उसीप्रकार   
सर्वद्रव्यों के प्रति रागी और कर्मरज के मध्य स्थित अज्ञानी कर्मरज   
से लिप्त हो जाता है।***

चंदन के वृक्ष के चारों ओर लिपटे एक साँप का विचार करें। हालाँकि   
वह वृक्ष पर रहता है, फिर भी साँप का विष वृक्ष में मिल नहीं जाता। वृक्ष   
निर्विष रहता है। साथ ही चंदन की शीतलता साँप में मिल नहीं जाती।

**ज्ञानी स्वयं को अज्ञान से मुक्त रखते हैं। वे राग एवं द्वेष के भावों   
से अलिप्त रहते हैं।**

एक ही व्यक्ति की तस्वीर और मूर्ति अलग−अलग हो सकती है।   
एक तस्वीर पर बारिश गिरने से कागज़ बैरबिखेर हो जाता है। वहीं दूसरी   
ओर, पानी से साफ हो जाने पर मूर्ति चमकने लगती है। **अज्ञानी कर्मों   
की बारिश को तस्वीर की तरह स्वीकार करता है और बैरबिखेर   
हो जाता है। ज्ञानी समस्त कर्मों का सहज स्वीकार करके स्वयं के   
पुरुषार्थ को दृढ़ करते हैं।**

⁕ **गाथा २२०−२२१−२२२−२२३** ⁕

**भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।**

**संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं॥ २२०॥**

**तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।**

**भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं॥ २२१॥**

**जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिंदूण।**

**गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे॥ २२२॥**

**तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिदूण।**

**अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे॥ २२३॥**

***जिसप्रकार अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों   
को भोगते हुए, खाते हुए भी शंख का श्वेतभाव कृष्णभाव को   
प्राप्त नहीं होता, शंख की सफेदी को कोई कालेपन में नहीं बदल   
सकता; उसीप्रकार ज्ञानी भी अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और   
मिश्र द्रव्यों को भोगे तो भी उसके ज्ञान को अज्ञानरूप नहीं किया   
जा सकता। जिसप्रकार जब वही शंख स्वयं उस श्वेत स्वभाव को   
छोड़कर कृष्णभाव (कालेपन) को प्राप्त होता है; तब काला हो   
जाता है; उसीप्रकार ज्ञानी भी जब स्वयं ज्ञानस्वभाव को छोड़कर   
अज्ञानरूप परिणमित होता है, तब अज्ञानता को प्राप्त हो जाता है।***

विभिन्न प्रकार के रंगीन वस्त्र पहनने से गोरे व्यक्ति की चमड़ी का रंग   
बदल नहीं जाता। परन्तु यदि वह धूप में रहेगा, तो चमड़ी का रंग बदल जाएगा।

रंगीन वस्त्र के साथ निकटता के कारण सफेद वस्त्र रंगीन नहीं हो   
जाते। परन्तु उसे रंगने से वह रंगीन हो जाता है। काली टोपी पहनने से सफेद   
बाल काले नहीं होते हैं, लेकिन उन्हें रंगने से वे काले हो सकते हैं। पानी

का रंग बर्तन के अनुसार बदल नहीं जाता, लेकिन उसमें रंग का मिश्रण   
करने से पानी का रंग बदल जाता है।

**ज्ञानी परिग्रह संग रहते होने पर भी अज्ञानी नहीं हो जाते हैं।   
परन्तु यदि वे उनमें ममत्व करें, तो अज्ञानी हो जाते हैं।**

⁕ **गाथा २२४−२२५−२२६−२२७** ⁕

**पुरिसो जह को वि इहं वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं।**

**तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए॥ २२४॥**

**एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं।**

**तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए॥ २२५॥**

**जह पुणं सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं।**

**तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए॥ २२६॥**

**एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं।**

**तो सोग ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए॥ २२७॥**

***जिसप्रकार इस जगत में कोई भी पुरुष आजीविका के लिए   
राजा की सेवा करता है तो वह राजा भी उसे अनेक प्रकार की   
सुखोत्पादक भोगसामग्री देता है; उसीप्रकार जीवरूपी पुरुष सुख   
के लिए कर्मरज का सेवन करता है तो वह कर्म भी उसे अनेक   
प्रकार की सुखोत्पादक भोगसामग्री देता है। जिसप्रकार वही पुरुष   
आजीविका के लिए राजा की सेवा नहीं करता तो वह राजा भी उसे   
अनेक प्रकार की सुखोत्पादक भोगसामग्री नहीं देता है; उसीप्रकार   
सम्यग्दृष्टी विषयभोगों के लिए कर्मरज का सेवन नहीं करता तो वह   
कर्म भी उसे अनेक प्रकार की सुखोत्पादक भोग−सामग्री नहीं देता।***

यदि व्यक्ति काम करता है, तो उसे वेतन मिलता है। यदि वह काम   
नहीं करता है, तो उसे कोई वेतन नहीं मिलता। यदि पानी को गर्म किया   
जाए, तो पानी गर्म हो जाएगा। यदि पानी को गर्म न किया जाए, तो पानी   
गर्म नहीं होगा। **अज्ञानी को परिग्रह में मोह होने से वह नए कर्मों को   
बाँधता है। ज्ञानी को परिग्रह में मोह न होने से वे नए कर्मों को नहीं   
बाँधते हैं।**

⁕ **गाथा २२८** ⁕

**सम्माद्दिट्ठी जीवा निस्संका होंति णिब्भया तेण।**

**सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका॥ २२८॥**

***सम्यग्दृष्टी जीव निःशंक होते हैं, इसीकारण निर्भय भी होते हैं।   
चूँकि वे सप्त भयों से रहित होते हैं; इसलिए निःशंक होते हैं।***

जैसे गारंटी के साथ खरीदी गई कोई भी चीज ग्राहक को उस अवधि   
के लिए निर्भय बना देती है। **ऐसे ही ज्ञानी जानते हैं कि आत्मा नित्य   
है, शाश्वत है, अतः वे निःशंक एवं निर्भय होते हैं।**

⁕ **गाथा २२९** ⁕

**जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे।**

**सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २२९॥**

***जो आत्मा कर्मबंध संबंधी मोह करनेवाले मिथ्यात्वादि   
भावरूप चारों पादों को छेदता है; उसको निःशंक अंग का धारी   
सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

जैसे किसी व्यक्ति ने सुना है कि राजधानी एक्सप्रेस मुंबई से दिल्ली   
जाती है। जब वह व्यक्ति वास्तव में यात्रा करके अनुभव करता है, तो   
उसकी श्रद्धा दृढ़ होती है। **आत्मानुभूति होने पर स्वानुभूति के बल पर**

**यह श्रद्धा दृढ़ होती है कि आत्मा नित्य है, इसी के बल पर उन्हें कर्मों   
की निर्जरा होती है।**

⁕ **गाथा २३०** ⁕

**जो दुण ण करेदि कखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु।**

**सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३०॥**

***जो चेतयिता आत्मा कर्मों के फलों के प्रति और सर्व धर्मों के   
प्रति कांक्षा नहीं करता; उसको निःकांक्षित अंग का धारी सम्यग्दृष्टी   
जानना चाहिए।***

जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना एक फूल के समान होती है।   
**अज्ञानी उसे मिलने वाले सभी फूलों को फेंक देता है। ज्ञानी उन्हें   
एक माला में बाँध देते है, जो स्वयं को उन्हीं गलतियों को नहीं   
दोहराने के लिए याद दिलाती है। फिर कहीं भी रुचि नहीं रहती।   
क्योंकि उन्हें ऐसा अनुभव हुआ है कि कोई भी व्यक्ति, वस्तु या   
घटना सुख नहीं देती है।**

⁕ **गाथा २३१** ⁕

**जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।**

**सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३१॥**

***जो चेतयिता आत्मा सभी धर्मों के प्रति जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं   
करता; उसको निर्विचिकित्सा अंग का धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

जैसे कूड़ेदान को प्रतिबिम्बित करने से दर्पण गंदा नहीं हो जाता।   
**ऐसे ही ज्ञानी ऐसा जानते एवं मानते हैं कि बाह्य खतरनाक दुर्गंध से   
आत्मा प्रभावित नहीं होता।**

⁕ **गाथा २३२** ⁕

**जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।**

**सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३२॥**

***जो चेतयिता आत्मा समस्त भावों में अमूढ़ है, यथार्थ दृष्टिवाला   
है; उसको निश्चय से अमूढ़दृष्टि अंग का धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

जैसे डॉक्टर बिना किसी गलती के सही दवा देते हैं, क्योंकि वे जानते   
हैं कि एक भी गलत दवा रोगी के लिए हानिकारक हो सकती है। **ऐसे   
ही ज्ञानी सदैव जागृत होते हैं एवं वीतरागी देव, भावलिंगी मुनि एवं   
वीतराग वाणी के प्रति समर्पित होते हैं।**

⁕ **गाथा २३३** ⁕

**जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।**

**सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३३॥**

***जो चेतयिता सिद्धों की भक्ति से युक्त है और परवस्तुओं   
के सभी धर्मों को गोपनेवाला है; उसको उपगूहन अंग का धारी   
सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

रेखागणित के दो छात्र इस बात पर प्रतिस्पर्धा करते थे कि कौन लंबी   
रेखा खींच सकता है। पहला सोचता है, ‘मैं सामने वाले की रेखा मिटा   
दूँ, जिससे मेरी रेखा लम्बी दिखेगी।’ दूसरा सोचता है, ‘मैं अपनी रेखा को   
लंबा करने के लिए अलग−अलग तरीके अपना लूँ।’

**दूसरों को नीचा दिखाकर कोई ऊपर नहीं उठ सकता। स्वयं में   
विकास करके अपने आंतरिक ज्ञान को मजबूत करना चाहिए।**

**ज्ञानी न तो दूसरों को खंडित करता है और न ही स्वयं को   
मंडित करता है।**

⁕ **गाथा २३४** ⁕

**उम्मग्गं गच्छतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा।**

**सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३४॥**

***जो चेतयिता उन्मार्ग में जाते हुए अपने आत्मा को सन्मार्ग में   
स्थापित करता है, वह स्थितिकरण अंग का धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

जैसे दूसरी गाड़ी को ओवरटेक करते समय व्यक्ति को अपने से   
विपरीत लेन में जाना पड़ता है। जैसे−जैसे वह आगे बढ़ता है, वह दृढ़   
होता है कि वह अपनी लेन में वापस आ जाएगा। **ज्ञानी जानते हैं कि   
कभी−कभी उन्हें समाज में व्यवहार निभाना पड़ सकता है, लेकिन   
वे तन्मय हुए बिना व्यवहार निभाते हैं। उन्हें दृढ़ श्रद्धा है कि वे अपने   
मार्ग पर चलते रहने के लिए पुरुषार्थ को नहीं रोकेंगे।**

⁕ **गाथा २३५** ⁕

**जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि।**

**सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३५॥**

***जो चेतयिता मोक्षमार्ग में स्थित निश्चय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान व   
चारित्र − इन साधनों के प्रति अथवा व्यवहार से आचार्य, उपाध्याय   
और साधु − इन साधुओं के प्रति वात्सल्य करता है; वह वात्सल्य   
अंग का धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

एक ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को केवल ब्राह्मण साधु को भिक्षा देने   
के लिए कहा था। एक बौद्ध भिक्षुक उनकी कुटिया पर पहुँचे तो पत्नी   
ने उनके सामने हाथ जोड़कर क्षमा चाहते हुए मना कर दिया। वे 11 साल   
तक प्रतिदिन उस झोंपड़ी पर आते रहे और हर बार पत्नी ने ऐसा ही किया।

एक दिन पति ने साधु के पास जाकर पूछा, “तुम मेरी कुटिया पर भिक्षा   
के लिए क्यों आते रहते हो, जब हमने यह स्पष्ट कह दिया है कि आपको   
यहाँ से कुछ भी नहीं मिलेगा ?” यह सुनकर बौद्ध भिक्षु ने उत्तर दिया,   
“तुम ऐसा क्यों कहते हो कि मुझे कुछ नहीं मिला? जिसतरह से तुम्हारी   
पत्नी ने इन्कार किया है, उसमें भी मुझे प्यार और सम्मान मिला है। वह   
मेरे लिए पर्याप्त था।”

**ज्ञानी करुणामयी वाणी एवं वर्तन के मूल्य को पहचानते हैं।**

⁕ **गाथा २३६** ⁕

**विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।**

**सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥ २३६॥**

***जो चेतयिता विद्यारूपी रथ पर आरूढ़ हुआ, मनरूपी रथ के   
पथ में भ्रमण करता है; वह जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना   
करनेवाला अर्थात् प्रभावना अंग का धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिए।***

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक उदाहरण देते हुए कहा है कि यदि मेरे   
पास एक सेब है और आपके पास एक सेब है। और हम अपने सेब का   
आदान−प्रदान करें, तो हम दोनों के पास एक−एक सेब रहेगा। लेकिन   
अगर मेरे पास गणित का ज्ञान है और आपके पास विज्ञान का ज्ञान है और   
हम उसका आदान−प्रदान करें, तो हम दोनों का ज्ञान बढ़ जाएगा।

**ज्ञानी यह जानते हैं, इसलिए वे ज्ञान का दान देते हैं, क्योंकि   
वह भौतिक वस्तुओं के दान से अधिक महिमावान है।**

**बंध अधिकार**

⁕ **गाथा २३७−२३८−२३९−२४०−२४१** ⁕

**जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि।**

**ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहिं वायामं॥ २३७॥**

**छिंदति भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।**

**सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं॥ २३८॥**

**उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।**

**णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किं पच्चयगो दु रयबंधो॥ २३९॥**

**जो सो द णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।**

**णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं॥ २४०॥**

**एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु।**

**रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रएण॥ २४१॥**

***जिसप्रकार कोई पुरुष अपने शरीर में तेल आदि चिकने पदार्थ   
लगाकर बहुत धूलवाले स्थान में रहकर शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता   
है तथा ताड़, तमाल, केला, बाँस, अशोक आदि वृक्षों को छेदता   
है, भेदता है; सचित्त व अचित्त द्रव्यों का उपघात (नाश) करता है।   
इसप्रकार नानाप्रकार के साधनों द्वारा उपघात करते हुए उस पुरुष   
के धूलि का बंध किसकारण से होता है ? − निश्चय से इस बात   
का विचार करो। उस पुरुष के जो तेलादि की चिकनाहट है; उससे   
ही उसे धूलि का बंध होता है, शेष शारीरिक चेष्टाओं से नहीं; ऐसा***

***निश्चय से जानना चाहिए। इसप्रकार बहुत प्रकार की चेष्टाओं में   
वर्तता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव अपने उपयोग में रागादिभावों को करता   
हुआ कर्मरूपी रज से लिप्त होता है, बँधता है।***

मंदिर के बाहर एक महिला अपनी सैंडल छोड़ती है। वह जब वापस   
आती है तो उसे पता चलता है कि किसी ने अनजाने में उसकी सैंडल   
पहन ली है और उसके जैसी ही सैंडल की एक जोड़ी बाहर छोड़ दी है।   
**अभिप्राय बंध का कारण है।**

एक अंधा और एक लंगड़ा दोस्त बन जाते हैं। वे दोनों मिलकर 3   
लाख कमाते हैं। अब वे उन्हें बांटना चाहते हैं। अंधे को लगता है कि उसे   
2 लाख मिलना चाहिए और लंगड़े को लगता है कि उसे 2 लाख मिलना   
चाहिए। वे दोनों बैठकर चर्चा करते हैं। लंगड़ा सोचता है कि अगर वह   
अंधे को मार डालेगा तो उसे सब रुपये मिल जाएँगे। वह सूप में जहर   
डालकर अंधे को देता है। जब सूप से उठने वाली भाप आँखों में जाती है,   
तो अंधे आदमी की आँखें ठीक हो जाती है और वह देखता है कि सूप   
तो काला है। वह सूप एक कुत्ते को देता है, जिसे पीने पर कुत्ता मर जाता   
है। फिर वह लंगड़े आदमी के पास जाता है और उसे लात मारता है। तो   
लंगड़ा ठीक हो जाता है। **दोनों के ठीक हो जाने के बावजूद भी दोनों   
को पाप का बंध होगा।**

एक व्यक्ति 8 लाख रुपये दान देना चाहता है, परन्तु अभी केवल 1   
लाख दे पाता है और बाकी 7 लाख बाद में देने का वादा करता है। उस   
व्यक्ति पर 7 लाख रुपये का कर्ज था, परन्तु उसकी मृत्यु हो जाने से वह   
अपना वादा पूरा नहीं कर सका। **फिर भी उसका अभिप्राय नेक था।   
अतः वह वादा पूरा न करने पर भी पुण्य बाँधता है।**

एक बिल्ली अपने बच्चे को प्यार से अपने मुँह में पकड़ती है, जबकि   
वह चूहे को अलग अभिप्राय से पकड़ती है। **क्रिया से अधिक महत्त्वपूर्ण   
अभिप्राय है।**

चाकू का इस्तेमाल डॉक्टर सर्जरी के लिए या हत्यारा किसी को मारने   
के लिए कर सकता है। **कर्मबंधन अभिप्राय से होता है, क्रिया से नहीं।**

⁕ **गाथा २४२−२४३−२४४−२४५−२४६** ⁕

**जह पुणं सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिदे संते।**

**रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं॥ २४२॥**

**छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।**

**सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं॥ २४३॥**

**उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।**

**णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किं पच्चयगो ण रयबंधो॥ २४४॥**

**जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।**

**णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं॥ २४५॥**

**एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु।**

**अकरंतो उवओगे रागादी ण लिप्पदि रएण॥ २४६॥**

***जिसप्रकार वही पुरुष सभीप्रकार के तेल आदि स्निग्ध पदार्थों के   
दूर किये जाने पर बहुत धूलिवाले स्थान में शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता   
है और ताल, तमाल, केला, बाँस और अशोक आदि वृक्षों को छेदता   
है, भेदता है; सचित्त− अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। इसप्रकार   
नानाप्रकार के करणों द्वारा उपघात करते हुए उस पुरुष को धूलि का   
बंध वस्तुतः किस कारण से नहीं होता − यह निश्चय से विचार करो।   
निश्चय से यह बात जानना चाहिए कि उसके जो बंध होता था, वह   
तेल आदि चिकनाई के कारण होता था, अन्य कायचेष्टादि कारणों से   
नहीं। इसप्रकार बहुत प्रकार के योगों में वर्तता हुआ सम्यग्दृष्टी उपयोग   
में रागादि को न करता हुआ कर्मरज से लिप्त नहीं होता।***

जैसे गोंद के बिना मोहर नहीं चिपकती, **ऐसे ही अशुद्ध भावों के   
बिना कर्म आत्मा में बँधते नहीं है।**

एक व्यक्ति किसी धनवान के पास पैसे मांगने जाता है और कहता   
है कि उसे अपनी बेटी की शादी के लिए पैसों की जरूरत है और बताता   
है कि उसके सामने कई करोड़पति इंतज़ार करते हुए कतार में खड़े रहते   
हैं। मगर वह बैंक में केवल कैशियर है। **ऐसे ही ज्ञानी बिना आसक्ति के   
अपने कर्तव्य का पालन करते हैं।**

यदि आप किसी गेस्टहाउस में जाते हैं, तो आपको सुधार करने में   
कोई दिलचस्पी नहीं होती है, क्योंकि आप उसे जल्द ही छोड़ देने वाले   
हैं। **शरीर एक गेस्टहाउस जैसा है, जहाँ से आत्मा को कभी−भी चेक   
आउट करना पड़ सकता है।**

कई बच्चे बाहर खेल रहे हैं और उनमें से किसी एक बच्चे का सिर   
फूट जाता है। माँ देखने जाती है कि क्या उसके बच्चे को चोट लगी है   
और वह बच्चे को सुरक्षित देखकर खुश होती है। भले ही उसे चोट खाने   
वाले बच्चे के प्रति हमदर्दी है, फिर भी उस संवेदनशीलता की तुलना उस   
संवेदनशीलता के साथ नहीं की जा सकती, जो संवेदनशीलता उसे अपने   
बच्चे को चोट लगने पर होती। **यदि आप किसी चीज से जुड़े नहीं हैं,   
तो आपको कोई चिंता नहीं होगी।**

**यदि आत्मा में कोई अशुद्ध भाव नहीं है, तो कर्म आत्मा के साथ बँधते नहीं हैं।**

⁕ **गाथा २४७** ⁕

**जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।**

**सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥ २४७॥**

***जो यह मानता है कि मैं परजीवों को मारता हूँ और परजीव   
मुझे मारते हैं; वह मूढ़ है, अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है अर्थात्   
ऐसा नहीं मानता है; वह ज्ञानी है।***

जैसे अपने दोस्त के साथ धूप में चलते हुए वहाँ जमीन पर आपकी   
और आपके दोस्त की छाया पड़े और वहाँ आप एक−दूसरे की छाया पर   
तलवार से वार करें, फिर भी आप जानते हैं कि आप किसी को भी मारने   
वाले नहीं हैं।

**ऐसे ही शरीर छाया की भाँति है और आत्मा वास्तविक व्यक्ति   
की भाँति है।**

⁕ **गाथा २४८−२४९** ⁕

**आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।**

**आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं॥ २४८॥**

**आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।**

**आउं ण हरंति तुहं कह ते मरणं कदं तेहिं॥ २४९॥**

***जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है − ऐसा जिनवरदेव   
ने कहा है। तू परजीवों के आयुकर्म को तो हरता नहीं है; फिर तूने   
उनका मरण कैसे किया ? जीवों का मरण आयुकर्म के क्षय से होता   
है − ऐसा जिनवरदेव ने कहा है। परजीव तेरे आयुकर्म को तो हरते   
नहीं हैं; फिर उन्होंने तेरा मरण कैसे किया ?***

कुछ फूल सूर्यास्त के बाद मुरझा जाते हैं। यह किसी के कारण नहीं,   
लेकिन सूर्यास्त के कारण है। **आयुकर्म सूर्यास्त की तरह है और वह   
किसी के वश में नहीं है।**

भारत में भूकंप में अनेक लोगों की मौत हुई और एक व्यक्ति गिरी हुई   
इमारतों के मलबे के नीचे दब गया और बेहोश हो गया। होश में आने पर   
उसने मलबे से बचाने के लिए फायर ब्रिगेड को फोन किया। जब उसे बाहर   
निकाला जा रहा था, तब उस पर क्रेन गिर गई और उसकी मौत हो गई।   
**इससे यह सिद्ध होता है कि मृत्यु की स्थिति में वह बच गया लेकिन**

**जीवित रहने की स्थिति में उसने अपना जीवन खो दिया। यह स्पष्टरूप   
से बताता है कि उसकी मृत्यु आयुकर्म के क्षय के कारण होती है।**

**आयुकर्म के उदय का अंत मृत्यु का कारण बनता है। कोई भी   
पराया तुम्हारे जीवन को लम्बा या छोटा करने के लिए आयुकर्म को   
दे या ले नहीं सकता।**

⁕ **गाथा २५०** ⁕

**जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।**

**सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥ २५०॥**

***जो जीव यह मानता है कि मैं परजीवों को जिलाता हूँ और   
परजीव मुझे जिलाते हैं; वह मूढ़ है; अज्ञानी है और जो इससे विपरीत   
है अर्थात् ऐसा नहीं मानता; वह ज्ञानी है।***

यदि कोई मानता है कि एक व्यक्ति दूसरों को जीवन देता है या   
डॉक्टर की तरह ठीक करता है, तो उस स्थिति में डॉक्टर को कभी नहीं   
मरना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को यह सत्य जानना चाहिए कि कोई किसी   
के आयुष्य को पलट नहीं सकता।

**ज्ञानी मानते हैं कि कोई भी किसी का आयुष्य घटा या बढ़ा   
नहीं सकता।**

⁕ **गाथा २५१−२५२** ⁕

**आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।**

**आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं॥ २५१॥**

**आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।**

**आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं॥ २५२॥**

***जीव आयुकर्म के उदय से जीता है − ऐसा सर्वज्ञदेव कहते हैं।   
तू परजीवों को आयुकर्म तो देता नहीं है; फिर तूने उनका जीवन कैसे   
किया? जीव आयुकर्म के उदय से जीता है − ऐसा सर्वज्ञदेव कहते   
हैं। परजीव तुझे आयुकर्म तो देते नहीं है; फिर उन्होंने तेरा जीवन   
कैसे किया ?***

यदि आप किसी दूसरे के दीये को तेल नहीं दे सकते तो, क्या आप   
कह सकते हो कि आप उसका दीया जला रहे हो ? **यदि आप किसी   
अन्य व्यक्ति को आयुकर्म नहीं दे सकते तो, क्या आप कह सकते   
हो कि आप दूसरों को जीवन दे रहे हो ?**

यदि कोई दूसरा आपके दीये को तेल नहीं दे सकता तो, क्या आप   
कह सकते हो कि वह आपका दीया जला रहा है? **यदि कोई अन्य   
आपको आयुकर्म नहीं दे सकता तो, क्या आप कह सकते हो कि   
दूसरा आपको जीवन दे रहा है ?**

⁕ **गाथा २५३** ⁕

**जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति।**

**सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥ २५३॥**

***जो यह मानता है कि मैं स्वयं परजीवों को सुखी−दुःखी करता   
हूँ; वह मूढ़ है, अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है; वह ज्ञानी है।***

जुड़वां बच्चों को जन्म के समय छोड़ दिया गया और उन्हें किसी   
अनाथालय में भेज दिया गया। उनमें से एक बच्चे को किसी करोड़पति ने   
गोद लिया और दूसरे बच्चे को झोपड़पट्टी में रहने वाले परिवार ने गोद लिया।   
कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को सुखी या दुःखी नहीं बना सकता। **ज्ञानी   
ऐसा मानते हैं कि सब कुछ उनके अपने कर्मों के फल के कारण है।**

⁕ **गाथा २५४−२५५−२५६** ⁕

**कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।**

**कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कह क्या ते॥ २५४॥**

**कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।**

**कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं॥ २५५॥**

**कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।**

**कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं॥ २५६॥**

***यदि सभी जीव कर्म के उदय से सुखी−दुःखी होते हैं और तू   
उन्हें कर्म तो देता नहीं है; तो तूने उन्हें सुखी−दुःखी कैसे किया ?   
यदि सभी जीव कर्म के उदय से सुखी−दुःखी होते हैं और वे तुझे   
कर्म तो देते नहीं हैं; तो फिर उन्होंने तुझे दुःखी कैसे किया ? यदि   
सभी जीव कर्म के उदय से सुखी−दुःखी होते हैं और वे तुझे कर्म तो   
देते नहीं हैं; तो फिर उन्होंने तुझे सुखी कैसे किया ?***

एक अमीर परिवार के पालतू कुत्ते को प्रतिदिन अपना भोजन ठीक   
समय पर मिल जाता है। वह सभी विलासिता को भोगता है। उसके मालिक   
को कठोर परिश्रम करना पड़ता है और दोपहर का भोजन टेबल पर तैयार   
होने के बावजूद भी उसे खाने का समय नहीं मिल पाता है।

एक लड़का अपने पिता को अपना परिणाम पत्र दिखाता है, खराब   
परिणाम देखकर उसका पिता हैरान रह जाता है। जब पिता बच्चे को डांटता   
है तो बच्चा कहता है, “यह आपका अपना परिणाम है और आपका अपना   
कर्म है कि आपको मेरे जैसा बेटा मिला।”

दो भाई लड़ते−झगड़ते अलग हो गए। बड़े भाई और उनके पार्टनर   
एक साल में 20 करोड़ का मुनाफा कमाते हैं। साथ ही छोटा भाई और   
उसके पार्टनर ने एक साल में 10 करोड़ का घाटा किया। अलग होने के

कारण सभी ने बड़े भाई को फटकार लगाई, लेकिन यह उनका अपना स्वयं   
का कर्म था, जिसे बदला नहीं जा सकता था।

**सभी जीवों को अपने−अपने कर्मों के उदय अनुसार अलग−अलग   
संयोग मिलते हैं। कोई किसी को सुखी या दुःखी नहीं कर सकता।**

⁕ **गाथा २५७−२५८** ⁕

**जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदएण सो सव्वो।**

**तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा॥ २५७॥**

**जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण चेव खलु।**

**तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा॥ २५८॥**

***जो मरता है और जो दुःखी होता है, वह सब कर्मोदय से होता   
है; इसलिए ‘मैंने मारा, मैंने दुःखी किया’ − ऐसा तेरा अभिप्राय   
क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है ? जो मरता नहीं है और दुःखी नहीं   
होता है, वह सब भी कर्मोदयानुसार ही होता है; इसलिए ‘मैंने नहीं   
मारा, मैंने दुःखी नहीं किया’ − ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तव   
में मिथ्या नहीं है ?***

एक पिता के चार बच्चे थे। वह सभी को बताता है कि उसने पहले   
बेटे को इंजीनियर बनाया, उसने दूसरा बेटे को डॉक्टर बनाया, तीसरे बेटे   
को वैज्ञानिक बनाया। चौथा बेटा पढ़ा नहीं। वह पिता पहले तीन बेटे की   
सफलता का श्रेय अपने पर लेता है और चौथे बेटे की असफलता के लिए   
बेटे को दोषी ठहराता है।

कोई व्यक्ति जीवनभर परिश्रम करता है, परन्तु कंगाल ही मरता है।   
वह अगले भव में किसी करोड़पति के बेटे के रूप में जन्म लेता है।

**कड़ी मेहनत से, अनुभव से या पहचान से अनुकूल और प्रतिकूल   
संयोग नहीं मिलते। ये सब तो अपने कर्मों के फल के कारण हैं।**

⁕ **गाथा २५९** ⁕

**एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति।**

**एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं॥ २५९॥**

***मैं जीवों को सुखी−दुःखी करता हूँ − यह जो तेरी बुद्धि है,   
यही मूढबुद्धि शुभाशुभकर्म को बाँधती है।***

जब मुनि निजात्मा के ध्यान में लीन हों, तब कोई भी मनुष्य,   
तिर्यंच या देव उनके ध्यान को भंग नहीं कर सकते। **यदि सुखी होने की   
भवितव्यता हो, तो कोई दुःखी नहीं कर सकता।** तीर्थंकर भगवान   
मनुष्य, देव एवं तिर्यंच को उपदेश देते हैं, **तीर्थंकर भगवान भी दुःखी   
होने की भवितव्यता वाले को सुखी नहीं कर सकते।**

⁕ **गाथा २६०−२६१** ⁕

**दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते।**

**तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि॥ २६०॥**

**मारिमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते।**

**तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि॥ २६१॥**

***मैं जीवों को सुखी−दुःखी करता हूँ − ऐसा जो तेरा अध्यवसान   
है, वही पुण्य−पाप का बंधक है। मैं जीवों को मारता हूँ और जिलाता   
हूँ − ऐसा जो तेरा अध्यवसान है, वही पाप−पुण्य का बंधक है।***

कोई एक हत्यारा किसी व्यक्ति को गोली मारता है, लेकिन वह   
व्यक्ति बच जाता है और उसे अस्पताल ले जाया जाता है। डॉक्टर अपनी   
तरफ से पूरी कोशिश करते हैं, लेकिन वह व्यक्ति चोट के कारण दम तोड़   
देता है। भले ही हत्यारे के हाथ से वह व्यक्ति नहीं मरा, फिर भी हत्यारा

पाप बाँधता है और डॉक्टर के हाथ से वह व्यक्ति मरा, फिर भी डॉक्टर   
पुण्य बाँधता है। क्योंकि उसका अभिप्राय अच्छा था।

मालिश करने वाला किसी व्यक्ति की मालिश करता है। उस व्यक्ति   
को तेल से एलर्जी होने के कारण उल्टा परिणाम आता है, फिर भी मालिश   
करने वाला पुण्य बाँधता है। क्योंकि उसका अभिप्राय अच्छा था।

**पुण्य या पाप कर्म के बंधन का कारण अभिप्राय है।**

⁕ **गाथा २६२** ⁕

**अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।**

**एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥ २६२॥**

**जीवों को मारो अथवा न मारो; कर्मबंध तो अध्यवसान से ही   
होता है − यह निश्चय से जीवों के बंध का संक्षेप है।**

मिथ्यादृष्टी अपने परिवार को त्यागकर साधु बन जाता है। पहले उसे   
अपने पूरे परिवार के पालन−पोषण का कर्तृत्वभाव था। साधु बनने के बाद   
सावधानी पूर्वक क्रियाएं करके एवं यथासंभव हिंसा न करके अनेक जीवों   
के पालन−पोषण का कर्तृत्वभाव उत्पन्न होता है। हालाँकि, वह अभी भी   
कर्तृत्वभाव के कारण कर्म बाँधता है। **कर्मबंधन का कारण अज्ञान एवं   
अभिमान है, शारीरिक हिंसा नहीं।**

⁕ **गाथा २६३−२६४** ⁕

**एवमलिए अदत्ते अबंभचेरे परिग्गहे चेव।**

**कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पावं॥ २६३॥**

**तह वि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव।**

**कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पुण्णं॥ २६४॥**

***जिसप्रकार हिंसा−अहिंसा के संदर्भ में कहा गया है; उसीप्रकार   
असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह के संदर्भ में जो अध्यवसान   
किये जाते हैं; उनसे पाप का बंध होता है और सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य   
और अपरिग्रह के संदर्भ में जो अध्यवसान किये जाते हैं; उनसे पुण्य   
का बंध होता है।***

अज्ञानी मानता है कि धर्म का संबंध शरीर के साथ है। जब वह मरता   
है, तो शरीर राख हो जाता है और उसका धर्म भी नष्ट हो जाता है। शरीर   
की क्रियाएं महत्वपूर्ण नहीं हैं। **निजात्मा की श्रद्धा महत्वपूर्ण है।**

जब जीव केवलज्ञान पाता है, तब शरीर में रहने वाले अनन्त निगोदिया   
जीव मर जाते हैं। फिर भी उस जीव को नए कर्म नहीं बंधते, क्योंकि वह   
निजात्मा के ध्यान में लीन है। **निजात्मा का ध्यान महत्वपूर्ण है।**

⁕ **गाथा २६५** ⁕

**वत्थं पडुच्च जं पुणं अज्झवसानं तु होदि जीवाणं।**

**ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि॥ २६५॥**

***जीवों के जो अध्यवसान होते हैं; वे वस्तु के अवलम्बनपूर्वक ही   
होते हैं; तथापि वस्तु से बंध नहीं होता, अध्यवसान से ही बंध होता है।***

जब कोई फोन करता है, तो फोन करने वाले को कॉल चार्ज चुकाना   
पड़ता है। इनकमिंग कॉल मुफ्त हैं। **आत्मा स्वयं के मलिन भावों के   
कारण कर्म को बाँधता है। इन भावों की उत्पत्ति के निमित्त पर   
दोषारोपण नहीं करना चाहिए।**

⁕ **गाथा २६६** ⁕

**दुक्खिदसुहिंदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि।**

**जा एसा मूढमदी गिरत्थया सा हु दे मिच्छा॥ २६६॥**

***मैं जीवों को दुःखी−सुखी करता हूँ, बाँधता हूँ, छुड़ाता हूँ −   
ऐसी जो तेरी मूढ़मति है; वह निरर्थक होने से वास्तव में मिथ्या है।***

युद्ध में एक सैनिक अपने शत्रु को मार डालता है। शत्रु का आयुकर्म   
समाप्त हो गया था, इसलिए हमें सैनिक को दोष नहीं देना चाहिए। **कोई   
किसी के सुख या दुःख के लिए जिम्मेदार नहीं है।**

⁕ **गाथा २६७** ⁕

**अज्झवसागणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।**

**मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं॥ २६७॥**

***यदि वास्तव में अध्यवसान के निमित्त से जीव बंधन को प्राप्त   
होते हैं और मोक्षमार्ग में स्थित जीव मुक्ति को प्राप्त करते हैं तो तू   
क्या करता है ? तात्पर्य यह है कि तेरा बाँधने−छोड़ने का अभिप्राय   
गलत ही सिद्ध हुआ न, व्यर्थ ही सिद्ध हुआ न?***

कब्रिस्तान ऐसे लोगों से भरे पड़े हैं जो मानते थे कि उनके बिना   
दुनिया नहीं चलेगी। **हालाँकि, कोई किसी के आधीन नहीं है।**

⁕ **गाथा २६८−२६९** ⁕

**सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियनेरइए।**

**देवमणुए य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं॥ २६८॥**

**धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च।**

**सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पानं॥ २६९॥**

***यह जीव अध्यवसान से तिर्यंच, नारक, देव, मनुष्य − इन सब   
पर्यायों और अनेकप्रकार के पुण्य−पाप भावों रूप स्वयं को करता***

***है। इसीप्रकार यह जीव अध्यवसान से धर्म−अधर्म, जीव−अजीव   
और लोक−अलोक इन सब रूप भी स्वयं को करता है।***

एक राजा अपनी मरणशय्या पर था। एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी   
करते हुए कहा कि जब वह मर जाएगा तो वह अपने महल के शौचालय में   
लाल कीड़े के रूप में पुनर्जन्म लेगा। उसने अपने चार पुत्रों से कहा कि वे   
लाल कीड़े को जन्म लेते ही तुरंत मार डालें, क्योंकि मैं लाल कीड़े के रूप   
में नहीं रहना चाहता। जब राजा मर जाता है, तो उसके बेटे शौचालय में   
लाल कीड़े को मारने के लिए दौड़ पड़ते हैं। नवजात लाल कीड़ा कूद जाता   
है और मरना नहीं चाहता। राजा अब इस शरीर से जुड़ा हुआ है। **आत्मा   
शरीर से जुड़ जाता है और यही संसार परिभ्रमण का कारण है।**

दो लोगों की सफेद शर्ट पर काले रंग का दाग लग जाता है। गहरा   
रंग और हल्का रंग। दोनों को लगता है कि शर्ट रंगीन हैं और वे भूल जाते   
हैं कि शर्ट सफेद थी और वे गंदी हुई हैं। **अज्ञानी मानता है कि शुभ और   
अशुभ भाव उसके हैं और यह स्वीकार नहीं करता कि दोनों आत्मा   
की मलिनता हैं।**

⁕ **गाथा २७०** ⁕

**एदाणि गत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीनि।**

**ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी न लिप्पंति॥ २७०॥**

***ये अध्यवसानभाव व इसप्रकार के अन्य अध्यवसानभाव   
जिनके नहीं हैं; वे मुनिराज अशुभ या शुभ कर्मों से लिप्त नहीं होते।***

मोतियाबिंद एक व्यक्ति की आँखों को ढँक लेता है और वह स्पष्टरूप   
से देख नहीं सकता और वस्तुओं के साथ टकरा जाता है | मोतियाबिंद दूर   
होने पर वह स्पष्ट रूप से देख सकता है और वस्तुओं के साथ टकराता   
नहीं है। **मुनि के मलिन भावों का अभाव होने के कारण उन्हें नए   
कर्मों का बंध नहीं होता है।**

⁕ **गाथा २७१** ⁕

**बुद्धी ववसाओ वि य अज्झवसानं मदी य विष्णानं।**

**एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो॥ २७१॥**

***बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव और   
परिणाम − ये सब एकार्थवाची ही हैं, पर्यायवाची ही हैं।***

जैसे चाँद की ओर इशारा करती हुई उंगली पर नहीं, बल्कि चाँद   
पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। ऐसे ही शब्दों पर नहीं, बल्कि भावों पर   
ध्यान देना चाहिए।

⁕ **गाथा २७२** ⁕

**एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण निच्छयणएन।**

**निच्छयणयासिदा पुणं मुणिणो पावंति निव्वाणं॥ २७२॥**

***इसप्रकार व्यवहारनय निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध जानों तथा   
निश्चय नय के आश्रित मुनिराज निर्वाण को प्राप्त होते हैं।***

यद्यपि किसी व्यक्ति के पास गंगा नदी को दर्शाने वाला एक नक्शा   
है, तथापि उसे अपनी प्यास बुझाने के लिए गंगा नदी तक पहुँचना   
पड़ता है। **ऐसे ही मोक्ष पाने के लिए व्यवहारनय छोड़ने योग्य है और   
निश्चयनय ग्रहण करने योग्य है।**

⁕ **गाथा २७३** ⁕

**वदसमिदीगुत्तीओ सीलतव जिगवरेहि पण्णत्तं।**

**कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु॥ २७३॥**

***जिनवरदेव के द्वारा कहे गये व्रत, समिति, गुप्ति, शील और   
तप करते हुए भी अभव्यजीव अज्ञानी और मिथ्यादृष्टी है। मोक्ष की***

***श्रद्धा से रहित वह अभव्यजीव यद्यपि शास्त्रों को पढ़ता है; तथापि   
ज्ञान की श्रद्धा से रहित उसको शास्त्रपठन गुण नहीं करता।***

जैसे बाहरी कपड़े बदलने से किसी व्यक्ति का कैंसर मिट नहीं जाता।   
ऐसे ही बाह्य वस्त्रादि परिग्रह का त्याग करने से आत्मा के विकारी भाव   
दूर नहीं हो जाते। **व्रत, जीवदया, संयम और तप उतने महत्वपूर्ण नहीं   
है जितना कि मिथ्यात्व एवं अज्ञान का त्याग।**

⁕ **गाथा २७४** ⁕

**मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।**

**पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स गाणं तु॥ २७४॥**

***तात्पर्य यह है कि शास्त्रपठन से उसे असली लाभ प्राप्त नहीं   
होता। वह अभव्यजीव भोग के निमित्तरूप धर्म की ही श्रद्धा करता   
है, उसकी ही प्रतीति करता है, उसी की रुचि करता है और उसी का   
स्पर्श करता है;***

वॉयस रिकॉर्डर दी गई सभी सूचनाओं को संग्रहीत कर सकता है,   
लेकिन उसे कोई ज्ञान नहीं है और वह मुक्ति को प्राप्त नहीं करेगा। **अनेक   
शास्त्रों को कंठस्थ करने के बजाय निजात्मा का अनुभव करना   
अधिक महत्त्वपूर्ण है।**

⁕ **गाथा २७५** ⁕

**सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।**

**धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं॥ २७५॥**

***किन्तु कर्मक्षय के निमित्त रूप धर्म की वह न तो श्रद्धा करता   
है, न रुचि करता है, न प्रतीति करता है और न वह उसका स्पर्श ही   
करता है।***

एक नया विकसित पौधा घास से घिरा हुआ है। किसान घास की   
देखभाल करता है, लेकिन पौधे की उपेक्षा करता है और इसलिए वह   
मुरझा जाता है। **व्रत, तपस्या, उपवास आदि की भाँति शुभ भावों   
पर ध्यान न देकर आत्मानुभूति पर ध्यान देना चाहिए, जो जीव के   
कर्मक्षय का कारण है।**

⁕ **गाथा २७६−२७७** ⁕

**आयारादी गाणं जीवादी दंसणं च विष्णेयं।**

**छज्जीवणिकं च तहा भणदि चरितं तु ववहारो॥ २७६॥**

**आदा खु मज्झ गाणं आदा मे दंसणं चरितं च।**

**आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो॥ २७७॥**

***आचारांगादि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्त्व दर्शन है और छह   
जीवनिकाय चारित्र है − ऐसा व्यवहारनय कहता है। निश्चय से मेरा   
आत्मा ही ज्ञान है, मेरा आत्मा ही दर्शन है, मेरा आत्मा ही चारित्र   
है, मेरा आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरा आत्मा ही संवर व योग है।***

व्यवहारनय से शास्त्रों में ज्ञान है। फिर भी व्यक्ति भगवान की मूर्ति   
को जानता है, मानता है और झुकता है।

निश्चयनय से भगवान की प्रतिमा भगवान नहीं हैं, बल्कि आत्मा की   
पूर्ण शुद्ध अवस्था है। शास्त्रज्ञान ज्ञान नहीं है, लेकिन आत्मा का चैतन्य   
स्वभाव वास्तविक ज्ञान है।

⁕ **गाथा २७८−२७९** ⁕

**जह फलिहमणी सुद्धो न सयं परिणमदि रागामादीहिं।**

**रंगिज्जदि अण्णेहिं द्र सो स्तादीहिं दव्वेहिं॥ २७८॥**

**एवं गाणी सुद्धो न सयं परिणमदि रागमादीहिं।**

**राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं॥ २७९॥**

***जिसप्रकार स्फटिकमणि शुद्ध होने से रागादिरूप से, लालिमारूप   
से अपने आप परिणमित नहीं होता; परन्तु अन्य लालिमादि युक्त   
द्रव्यों से वह लाल किया जाता है। उसीप्रकार ज्ञानी अर्थात् आत्मा   
शुद्ध होने से अपने आप रागादि रूप नहीं परिणमता; परन्तु अन्य   
रागादि दोषों से वह रागादि रूप किया जाता है।***

एक पारदर्शी गिलास में मीठा शर्बत भरा होने के कारण गिलास मीठा   
नहीं हो जाता। जैसे फिल्म के पर्दे पर आग के दृश्य के कारण पर्दा जल   
नहीं जाता, बरसात के दृश्य के कारण पर्दा भीग नहीं जाता या लड़ाई के   
दृश्य के कारण पर्दा कट नहीं जाता। **इसीप्रकार आत्मा में मलिन भाव   
होने के कारण आत्मा मलिन नहीं हो जाता।**

⁕ **गाथा २८०** ⁕

**ण य रागदोसमोहं कुव्वदि गाणी कसायभावं वा।**

**सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावानं॥ २८०॥**

***ज्ञानी राग−द्वेष−मोह अथवा कषायभावों में अपनापन नहीं   
करता; इसकारण वह उन भावों का कारक नहीं है अर्थात् कर्ता नहीं है।***

जैसे पानी बिना गर्म किए गर्म नहीं होता है। **ऐसे ही ज्ञानी निमित्त   
में जुड़े बिना अशुद्ध भावों रूप परिणमित नहीं होते।**

⁕ **गाथा २८१** ⁕

**रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।**

**तेहिं दु परिणमंतो रागादि बंधदि पुणो वि॥ २८१॥**

***राग−द्वेष और कषाय कर्मों के होने पर अर्थात् उनके उदय होने   
पर जो भाव होते हैं; उनरूप परिणमित होता हुआ अज्ञानी रागादि   
को पुनः पुनः बाँधता है।***

जैसे एक व्यक्ति अपने बैंक के खाते से पैसे निकालता है और फिर   
से पैसा जमा करता है। तो उसका हिसाब चलता रहता है। **ऐसे ही आत्मा   
पिछले कर्मों का फल पाता है, साथ ही नए कर्मों को बाँधता है।   
अतः वह कर्म के खाते से मुक्त नहीं होता है।**

⁕ **गाथा २८२** ⁕

**रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।**

**तेहिं दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा॥ २८२॥**

***राग−द्वेष और कषाय कर्मों के होने पर अर्थात् उनके उदय होने पर   
जो भाव होते हैं; उनरूप परिणमित हुआ आत्मा रागादि को बाँधता है।***

अगले दिन वही व्यक्ति अपने बैंक खाते से पैसे निकालता है और   
फिर से पैसा जमा करता है। तो उसका हिसाब चलता रहता है। **ऐसे ही   
आत्मा पिछले कर्मों का फल पाता है, और फिर से नए कर्मों को   
बाँधता है। अतः वह कर्म के खाते से मुक्त नहीं होता है।**

⁕ **गाथा २८३−२८४−२८५** ⁕

**अप्पडिकमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विष्णेयं।**

**एदेणुवदेसेण य अकारगो वण्णिदो चेदा॥ २८३॥**

**अप्पडिकमणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चखाणं पि।**

**एदेणुवदेसेण य अकारगो वण्णिदो चेदा॥ २८४॥**

**जावं अप्पडिकमणं अपच्चखाणं च दव्वभावानं।**

**कुव्वदि आदा तावं कत्ता सो होदि गादव्वो॥ २८५॥**

***अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है। इसीप्रकार अप्रत्याख्यान भी दो   
प्रकार का जानना चाहिए। इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया   
है। अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है − द्रव्यसंबंधी अप्रतिक्रमण और   
भावसंबंधी अप्रतिक्रमण। इसीप्रकार अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का   
है − द्रव्यसंबंधी अप्रत्याख्यान और भावसंबंधी अप्रत्याख्यान। इस   
उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है। जबतक आत्मा द्रव्य का   
और भाव का अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान करता है; तबतक वह   
कर्ता होता है − ऐसा जानना चाहिए।***

जब हम ‘क्षमा करें’ कहते हैं, तो हम क्षमा मांगते हैं। यह महत्वपूर्ण   
बात याद रखनी चाहिए कि 'क्षमा करें' का मतलब है कि एक ही गलती   
को दुबारा नहीं दोहराना। **आत्मा को अपनी मलिन परिणति को त्यागने   
में सक्षम होने के लिए अपनी कमजोरी का एहसास होना चाहिए।**

एक बूढ़ा आदमी एक रस्सी से बंधी गाय को चलने के लिए खींचने   
की कोशिश कर रहा है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उस बूढ़े व्यक्ति को सलाह   
देता है कि वह उसके सामने घास पकड़कर उसे प्रसन्न करे। अब गाय घास   
खाने के लिए उस व्यक्ति का पीछा करती है। **आशा और अपेक्षाओं की   
रस्सी से सभी अज्ञानी खींचे जा रहे हैं। यही उनके दुःख का कारण   
है। हमें भविष्य की सभी कामनाओं का त्याग करना चाहिए।**

जैसे एयरहोस्टेस अपनापन किए बिना यात्रियों का स्वागत करती है,   
ऐसे ही ज्ञानी को किसी भी घटना में अपनापन नहीं होता। हम अपनापन   
करके मेहमानों का स्वागत करते हैं। **अज्ञानी में मोहभाव होता है।**

⁕ **गाथा २८६−२८७** ⁕

**आधाकम्मादीया पोग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।**

**कह ते कुव्वदि गाणी परदव्वगुणा दु जे णिच्छं॥ २८६॥**

**आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं।**

**कह तं मम होदि कयं जं णिच्चमचेदनं वृत्तं॥ २८७॥**

***अधःकर्मादि जो पुद्‌गल द्रव्य के दोष हैं; उन्हें ज्ञानी (आत्मा)   
कैसे करे ? क्योंकि वे तो सदा ही परद्रव्य के गुण हैं। पुद्‌गलद्रव्यमय   
अधः कर्म और उद्देशिक मेरे किये कैसे हो सकते हैं? क्योंकि वे सदा   
अचेतन कहे गये हैं।***

यदि आप किसी से कहो कि ‘क्रोध करो’, तो वह उस समय क्रोध   
नहीं कर पाता। जब कोई व्यक्ति क्रोधित हो जाता है और उसे क्रोध को   
रोकने की सलाह देने पर भी वह क्रोध को रोक नहीं पाता। आपको मंदिर   
में दान देने का शुभभाव आता है, लेकिन वह भाव बार−बार नहीं आता   
है। **आत्मा शुभाशुभ भावों का कर्ता नहीं है। वे भाव पूर्वकर्म के उदय   
से उत्पन्न होते हैं।**

**मोक्ष अधिकार**

⁕ **गाथा २८८−२८९−२९०** ⁕

**जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो।**

**तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स॥ २८८॥**

**जड़ ण वि कुणदि च्छेदं ण मुच्चदे तेण बंधणवसो सं।**

**काले उ बहुगेण वि ण सो गरो पावदि विमोक्खं॥ २८९॥**

**इय कम्मबंधणाणं पदेसठिइपयडिमेवमणुभागं।**

**जागंतो वि ण मुच्चदि मुच्चदि सो चेव जदि सुद्धो॥ २९०॥**

***जिसप्रकार बहुत काल से बंधन में बँधा हुआ कोई पुरुष उस   
बंधन के तीव्रमंदस्वभाव को, उसकी कालावधि को तो जानता है;   
किन्तु उस बंधन को काटता नहीं है तो वह उससे मुक्त नहीं होता तथा   
बंधन में रहता हुआ वह पुरुष बहुत काल में भी बंधन से छूटनेरूप   
मुक्ति को प्राप्त नहीं करता। उसीप्रकार यह आत्मा कर्मबंधनों के   
प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग को जानता हुआ भी कर्मबंधन   
से नहीं छूटता; किन्तु यदि रागादि को दूर कर वह स्वयं शुद्ध होता है   
तो कर्मबंधन से छूट जाता है।***

एक तोते का मालिक उसे बार−बार सिखाता है कि जब बिल्ली   
उसके पास आये, तो उड़ जाना। समय के चलते तोता अपने मालिक के   
उपदेश को कंठस्थ कर लेता है। हालाँकि, जब अपने मालिक के उपदेश   
का पालन करने का समय आता है, तभी एक बिल्ली आती है, वह उड़ता   
नहीं है और बिल्ली इसे मार देती है। **सिर्फ शास्त्रों को कंठस्थ करने से   
कोई लाभ नहीं है, अतः उन्हें अंतर में धारण करना चाहिए।**

एक आध्यात्मिक छात्र एक निबंध में बार−बार लिखता है, ‘मैं किसी   
द्रव्य का कर्ता नहीं हूँ।’ उसे उसके निबंध लेखन के लिए सम्मानित किया   
जा रहा था। जब उससे पूछा गया कि निबंध किसने लिखा है, तो उसने गर्व   
से कहा, “यह सब मैंने स्वयं लिखा है।” इस विषय में उसकी मान्यता उसके   
द्वारा व्यक्त किए गए शब्दों से मेल नहीं खाती। **क्षयोपशम ज्ञान, मनमोहक   
प्रवचन एवं प्रभावशाली लेखन से अधिक महत्वपूर्ण सम्यग्दर्शन है।**

उपवास, व्रत, तप आदि सब क्रियाकांड हैं। बोले जाने वाले शब्द भी   
क्रियाकांड हैं। दोनों सच्चे धर्म नहीं हैं। **आत्मा का अनुभव ही सच्चा धर्म है।**

⁕ **गाथा २९१** ⁕

**जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो न पावदि विमोक्खं।**

**तह बंधे चिंतंतो जीवो वि ण पावदि विमोक्खं॥ २९१॥**

***जिसप्रकार बंधनों से बँधा हुआ पुरुष बंधों का विचार करने से   
बंधों से मुक्त नहीं होता; उसीप्रकार जीव भी बंधों के विचार करने से   
मुक्ति को प्राप्त नहीं करता।***

एक अंधे व्यक्ति को चलने से पहले सोचना चाहिए, लेकिन सोचने   
मात्र से उसे मार्ग की खोज नहीं होगी। **उसीतरह, बंधन के विचार मात्र   
से आत्मा को बंधन से मुक्ति नहीं मिल जाती।**

⁕ **गाथा २९२** ⁕

**जह बंधे छेत्तूण य बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं।**

**तह बंधे छेत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं॥ २९२॥**

***जिसप्रकार बंधनबद्ध पुरुष बंधों को छेदकर मुक्त होता है;   
उसीप्रकार जीव भी बंधों को छेदकर मुक्ति को प्राप्त करता है।***

जो देख सकता हो, उस व्यक्ति को चलने से पहले सोचना नहीं   
पड़ता, क्योंकि वह रास्ता देख सकता है। **ज्ञानी मोक्ष के मार्ग को जानते   
हैं और देखते हैं।**

⁕ **गाथा २९३** ⁕

**बंधानं च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहावं च।**

**बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि॥ २९३॥**

***बंधों के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर जो   
जीव बंधों के प्रति विरक्त होता है; वह कर्मों से मुक्त होता है।***

एक शेर का बच्चा, जो बकरियों के झुंड के साथ बड़ा होता है,   
उसे अपने वास्तविक स्वरूप का एहसास नहीं है और अपनी मान्यता में   
अटक जाता है। जब उसे इसका एहसास होता है, तब वह शेर की तरह   
स्वतंत्र रूप से जीवन जीने के लिए झुंड को छोड़ देता है। **जब आत्मा   
बंध के स्वभाव को जानता है और बंधन छोड़ देता है, तब वह मुक्त   
हो जाता है।**

⁕ **गाथा २९४** ⁕

**जीवो बंधो य तहा छिज्जेति सलक्खणेहिं नियएहिं।**

**पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा॥ २९४॥**

***जीव तथा बंध नियत स्वलक्षणों से छेदे जाते हैं। प्रज्ञारूपी छैनी   
से छेदे जाने पर वे नानात्व (भिन्नपने) को प्राप्त होते हैं।***

जैसे जोड़ वाली लोहे की छड़ को हथौड़े लगाकर छैनी द्वारा अलग   
किया जा सकता है। **ऐसे ही प्रज्ञाछैनी से कर्म को आत्मा से अलग   
किया जा सकता है।**

⁕ **गाथा २९५** ⁕

**जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं गियएहिं।**

**बंधो छेददव्वो सुद्धा अप्पा य घेत्तव्वो॥ २९५॥**

***इसप्रकार जीव और बंध अपने निश्चित स्वलक्षणों द्वारा छेदे   
जाते हैं। ऐसा करके बंध को छोड़ देना चाहिए और शुद्ध आत्मा को   
ग्रहण करना चाहिए।***

जैसे गेहूं को कंकड़ से अलग करना आवश्यक है। कंकड़ फेंक दिए   
जाते हैं और गेहूं रखा जाता है। **कर्म को आत्मा से दूर करना आवश्यक   
है। कर्म दूर हो जाते हैं और आत्मा रह जाता है।**

⁕ **गाथा २९६** ⁕

**कह सो धिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु धिप्पदे अप्पा**।

**जह पण्णाइ विभत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो॥ २९६॥**

***वह आत्मा कैसे ग्रहण किया जाये ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते   
हैं कि उसे प्रज्ञा से ही ग्रहण किया जाता है। जिसप्रकार प्रज्ञा से भिन्न   
किया; उसीप्रकार प्रज्ञा से ग्रहण करना चाहिए।***

जैसे चावल कढ़ाई के तले में चिपक जाते हैं। हम चावल को चम्मच   
के माध्यम से खुरचते हैं। फिर हम उसी चम्मच से चावल खाते हैं। **ऐसे   
ही ज्ञान के माध्यम से आत्मा को कर्म से अलग करना है। फिर उसी   
ज्ञान से आत्मा को जानना है।**

⁕ **गाथा २९७** ⁕

**पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।**

**अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति गायव्वा॥ २९७॥**

***प्रज्ञा के द्वारा इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि जो चेतनेवाला   
है, वह निश्चय से मैं ही हूँ। शेष सभी भाव मेरे से भिन्न ही हैं।***

जैसे व्यक्ति जानता है कि कमीज उसी की है, लेकिन उस पर चिपकी   
हुई गंदगी उसकी नहीं है। **ऐसे ही ज्ञानी समझते हैं कि वे शुद्धात्मा है   
और सभी प्रकार के अशुद्धभाव उनके नहीं हैं।**

⁕ **गाथा २९८−२९९** ⁕

**पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।**

**अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा॥ २९८॥**

**पण्णाए घित्तव्वो जो गादा सो अहं त णिच्छयदो।**

**अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा॥ २९९॥**

***प्रज्ञा के द्वारा इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि जो देखनेवाला   
है, वह निश्चय से मैं ही हूँ; शेष जो भाव हैं, वे मुझसे पर हैं − ऐसा   
जानना चाहिए। प्रज्ञा के द्वारा इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए कि जो   
जाननेवाला है, वह निश्चय से मैं ही हूँ; शेष जो भाव हैं, वे मुझसे   
पर हैं − ऐसा जानना चाहिए।***

यदि किसी को अशुद्धियों के साथ सोना मिले, तब भी उसे लगता   
है कि उसे सोना मिल गया है। यदि किसी को दाग वाला हीरा मिले, तब   
भी उसे खुशी होती है कि उसके पास हीरा है। **ऐसे ही वर्तमान पर्याय में   
अशुद्धता होने पर भी ज्ञानी स्वयं को नित्य शुद्धात्म स्वरूप अनुभव   
करते हैं, अतः वे सुख का अनुभव करते हैं।**

⁕ **गाथा ३००** ⁕

**को नाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे पराइए भावे।**

**मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं॥ ३००॥**

***अपने शुद्ध आत्मा को जानने वाला और सर्व परभावों को   
पर जानने वाला कौन ज्ञानी ऐसा होगा कि जो यह कहेगा कि ये   
परपदार्थ मेरे हैं? तात्पर्य यह है कि कोई भी समझदार व्यक्ति यह   
नहीं कहता कि परपदार्थ मेरे हैं तो फिर आत्मज्ञानी व्यक्ति ऐसी बात   
कैसे कह सकता है ?***

जब अतिथि को एक गिलास पानी दिया जाता है। तब मेजबान   
जानता है कि गिलास उसका है और मेहमान बस उसमें से पानी पीएगा   
और मेजबान को गिलास वापस लौटा देगा। **ज्ञानी मानते हैं कि आत्मा   
नित्य टिकता है और मलिन भाव दूर हो जाते हैं।**

⁕ **गाथा ३०१−३०२−३०३** ⁕

**थेयादी अवराहे जो कुव्वदि सो उ संकिदो भमइ।**

**मा बज्झेज्जं केण वि चोरी ति जगम्हि वियरंतो॥ ३०१॥**

**जो न कुणदि अवराह सो निस्संको दु जणवदि भमदि।**

**ण वि तस्स बज्झितुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ॥ ३०२॥**

**एवम्हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिंदो चेदा।**

**जड़ पुणं गिरावराहो निस्संकोहं न बज्झामि॥ ३०३॥**

***जो पुरुष चोरी आदि अपराध करता है, वह ‘कोई मुझे चोर   
समझकर पकड़ न ले’ – इसप्रकार शंकित होता हुआ लोक में घूमता   
है। जो पुरुष अपराध नहीं करता है, वह लोक में निःशंक घूमता है;   
क्योंकि उसे बँधने की चिंता कभी भी उत्पन्न नहीं होती। इसीप्रकार   
अपराधी आत्मा ‘मैं अपराधी हूँ, इसलिए मैं बँधूंगा' − इसप्रकार   
शंकित होता है और यदि वह निरपराध हो तो ‘मैं नहीं बँधूंगा’ −   
इसप्रकार निःशंक होता है।***

एक व्यक्ति से पूछा जाता है, “आप जेल से बाहर कब आए ?”   
वह जवाब देता है कि “मैं कभी जेल में गया ही नहीं, तो बाहर आने का   
सवाल ही कहाँ है?” **निश्चयनय से आत्मा कर्म से बँधा नहीं है। अतः   
आत्मा सदैव मुक्त है।**

बिना टिकट सफर कर रहा यात्री परेशान रहता है, क्योंकि जो भी   
उसके पास आता है, वह टिकट चेकर लगता है। टिकट वाला व्यक्ति   
चिंतामुक्त होता है। **अज्ञानी सदैव डरा हुआ रहता है। ज्ञानी सदैव   
निर्विकल्प रहते हैं।**

अनादि काल से आत्मा ने जानने के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं किया।   
ज्ञान आत्मा का स्वभाव है और वह अपराध नहीं है। **इसलिए ज्ञानी   
निर्भय होते हैं।**

⁕ **गाथा ३०४−३०५** ⁕

**संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधिय च एयदुं।**

**अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो॥ ३०४॥**

**जो पुणं गिरावराधो चेदा निस्संकिओ उ सो हो।**

**आराहणाइ णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणंतो॥ ३०५॥**

***संसिद्धि, राध, सिद्ध, साधित और आराधित − ये शब्द   
एकार्थवाची हैं। जो आत्मा अपगतराध है अर्थात् राध से रहित है;   
वह आत्मा अपराध है। और जो आत्मा निरपराध है, वह निःशंक   
होता है। ऐसा आत्मा ही मैं हूँ − ऐसा जानता हुआ आत्मा सदा   
आराधना में वर्तता है।***

एक लुटेरा पकड़े जाने से डरता है, क्योंकि उसने लूट की है। जो   
व्यक्ति परिश्रमपूर्वक अपना टैक्स भर देता है, वह आराम से रहता है।   
**अज्ञानी भयभीत है, जबकि ज्ञानी निर्भय हैं।**

⁕ **गाथा ३०६−३०७** ⁕

**पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा नियत्ती य।**

**गिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो॥ ३०६॥**

**अप्पडिकमणप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव।**

**अणियत्ती य अनिंदागरहासोही अमयकुंभो॥ ३०७॥**

***प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा,   
गर्हा और शुद्धि − ये आठ प्रकार के विषकुंभ हैं; क्योंकि इनमें   
कर्तृत्वबुद्धि संभवित है। अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार,   
अधारणा, अनिवृत्ति, अनिन्दा, अगर्हा और अशुद्धि − ये आठ प्रकार   
के अमृतकुंभ हैं; क्योंकि इनमें कर्तृत्वबुद्धि का निषेध है।***

किसी व्यक्ति के कपड़े गंदे होने पर उसे धोने पड़ते हैं। यदि वे गंदे   
नहीं होते, तो उन्हें धोने की जरूरत नहीं थी। **प्रतिक्रमण जहर के घड़े   
की तरह है।**

यदि वे गलती से गंदे हो गए हो, तो व्यक्ति अपने गंदे कपड़े को धो   
देगा। क्योंकि वह जानता है कि वे साफ हो जाएंगे और इसलिए उन्हें धोना   
अच्छा है। **प्रतिक्रमण अमृत के घड़े की तरह है।**

**सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार**

⁕ **गाथा ३०८−३०९−३१०−३११** ⁕

**दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।**

**जह कडयादीहिंदु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह॥ ३०८॥**

**जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।**

**तं जीवमजीवं वा तेहिमणणं वियाणाहि॥ ३०९॥**

**ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं न तेण सो आदा।**

**उप्पादेदि न किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि॥ ३१०॥**

**कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।**

**उप्पज्जंति य गियमा सिद्धी दुन दीसदे अण्णा॥ ३११॥**

***जिसप्रकार जगत में कड़ा आदि पर्यायों से सोना अनन्य है;   
उसीप्रकार जो द्रव्य जिन गुणों से उत्पन्न होता है, उसे उन गुणों से   
अनन्य जानो। जीव और अजीव के जो परिणाम सूत्र में बताये गये हैं;   
उन परिणामों से जीव या अजीव को अनन्य जानो। यह आत्मा किसी   
से उत्पन्न नहीं हुआ; इसकारण किसी का कार्य नहीं है और किसी   
को उत्पन्न नहीं करता; इसकारण किसी का कारण भी नहीं है। कर्म   
के आश्रय से कर्ता होता है और कर्ता के आश्रय से कर्म उत्पन्न होते   
हैं; अन्य किसी भी प्रकार से कर्ता−कर्म की सिद्धि नहीं देखी जाती।***

नींबू को उसके पात्र से हटाया जा सकता है, लेकिन खट्टेपन से कभी   
दूर नहीं किया जा सकता, जो कि उसका स्वभाव है। **आत्मा को शरीर से   
अलग किया जा सकता है, लेकिन ज्ञान से कभी अलग नहीं किया**

**जा सकता, जो कि उसका ध्रुव स्वभाव है।**

आम में स्पर्श, रस, गंध एवं वर्ण होता है। सभी गुण एक−दूसरे से   
अलग नहीं किए जा सकते, लेकिन ज्ञान द्वारा अलग जाने जा सकते हैं।   
उदाहरण के लिए, केवल आँखों के माध्यम से रंग दिखाई देता है। **आत्मा   
में ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र एवं सुख गुण हैं। ये गुण एक−दूसरे   
से अलग नहीं किए जा सकते, लेकिन अलग समझे जा सकते हैं।   
आत्मा अनन्त गुणों की एकता है।**

भारत अन्य सभी देशों से अलग है, लेकिन अपने अलग−अलग   
राज्यों से अलग नहीं है। **आत्मा अन्य समस्त पदार्थों से अलग है,   
लेकिन अपने अनन्त गुणों से अलग नहीं है।**

आप ऐसा सोचकर दूसरे व्यक्ति के लिए कुछ अच्छा नहीं कर सकते   
कि ईश्वर आपके लिए कुछ अच्छा करेगा। भगवान आपको शामिल किए   
बिना सीधे ही अच्छा क्यों नहीं करते हैं? यदि आप दूसरों के लिए अच्छा   
कर सकते हैं, तो आप अपने लिए अच्छा क्यों नहीं करते ? **भगवान या   
कोई अन्य जीव आपके लिए अच्छा या बुरा नहीं कर सकता।**

⁕ **गाथा ३१२−३१३** ⁕

**चेदा दु पयडीअट्ठ उप्पज्जइ विणस्स।**

**पयडी वि चेययट्टं उप्पज्जइ विगस्सइ॥ ३१२॥**

**एवं बंधो उ दोन्हं पि अण्णोण्णप्पच्चया हवे।**

**अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायदे॥ ३१३॥**

***चेतन आत्मा प्रकृति के निमित्त से उत्पन्न होता है और नष्ट   
होता है। इसीप्रकार प्रकृति भी चेतन आत्मा के निमित्त से उत्पन्न   
होती है और नष्ट होती है। इसप्रकार परस्पर निमित्त से आत्मा और   
प्रकृति दोनों का बंध होता है और उससे संसार होता है।***

एक दोस्त दूसरे दोस्त का हाथ पकड़कर कहीं भी जाने नहीं देता।   
वहाँ दोनों दोस्त एक दूसरे से बँधे हुए हैं। **आत्मा और कर्म एक दूसरे से   
बँधे हुए हैं। तीव्र पुरुषार्थ के बल पर कर्मों का क्षय किया जा सकता   
है, लेकिन आत्मा अप्रभावित रहता है।**

एक पुरुष और एक महिला अलग हैं, लेकिन यदि वे एक−दूसरे से   
मिलते हैं, तो बच्चा होता है और परिवार शुरू हो जाता है। **आत्मा और   
कार्माण वर्गणा अलग−अलग हैं, लेकिन यदि आत्मा कर्मों के साथ   
बँधता है, तो जन्म−मरण का संसारचक्र चलता रहता है।**

⁕ **गाथा ३१४−३१५** ⁕

**जा एस पयडीअट्ठ चेदा मेव विमुञ्चए।**

**अयाणओ हवे तावमिच्छादिट्ठी असंजओ॥ ३१४॥**

**जदा विमुञ्चए चेदा कम्मफलमणंतयं।**

**तदा विमुत्तो हवदि जाणओ पासओ मुणी॥ ३१५॥**

***जबतक यह आत्मा प्रकृति के निमित्त से उपजना−विनशना   
नहीं छोड़ता; तबतक वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टी है, असंयत है। जब   
यह आत्मा अनन्त कर्मफल छोड़ता है; तब वह ज्ञायक है, ज्ञानी है,   
दर्शक है, मुनि है और विमुक्त है अर्थात् बंध से रहित है।***

एक लड़की भारत में है लेकिन सपना देखती है कि वह अमेरिका में   
है। जब उसे पता चलता है कि यह एक सपना है और वह जाग जाए तो   
वह भारत वापस आ सकती है। **जीव मिथ्या मानता है कि वह शरीर है   
और पुद्‌गल द्रव्य उसका है। आत्मानुभूति के लिए पुद्‌गल पदार्थों   
का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। बस, अज्ञान से जागना   
अनिवार्य है।**

एक आदमी को अंधेरे में साँप दिखाई देता है। जब वह रोशनी करता   
है, तब उसे पता चलता है कि यह केवल काली रस्सी है और वहाँ कभी   
साँप था ही नहीं। **जीव मानता है कि सभी पुद्‌गल पदार्थ उसके हैं।   
जब जीव को आत्मानुभूति होती है, तब उसे अनुभव होता है कि   
पुद्‌गल पदार्थों को अपना मानना भ्रम था। वे कभी उसके थे ही नहीं।**

⁕ **गाथा ३१६** ⁕

**अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावद्विदो दु वेदेदि।**

**गाणी पुणं कम्मफलं जाणदि उदिदं न वेदेदि॥ ३१६॥**

***अज्ञानी प्रकृति के स्वभाव में स्थित रहता हुआ कर्मफल को   
वेदता है, भोगता है और ज्ञानी तो उदय में आये हुए कर्मफल को मात्र   
जानता है, भोगता नहीं।***

एक समाचार पत्र में किसी व्यक्ति की मृत्यु के समाचार छपे। उसके   
परिवारजन उसके निधन से गहरे सदमे में थे। अन्य लोग केवल पाठक हैं   
और उन्हें कुछ भी नहीं होता। **अज्ञानी कर्म के उदय से दुःखी होता है,   
क्योंकि वह उसमें जुड़ता है, लेकिन ज्ञानी अलिप्त रहते हैं, अतः कर्म   
के उदय से दुःखी नहीं होते हैं।**

⁕ **गाथा ३१७** ⁕

**ण मुयदि पयडिमभव्वो सुठु वि अज्झाइदूण सत्थानि।**

**गुडदुद्धं पि पिबंता न पण्णया निव्विसा होंति॥ ३१७॥**

***जिसप्रकार गुड़ से मिश्रित मीठे दूध को पीते हुए भी सर्प निर्विष   
नहीं होते; उसीप्रकार शास्त्रों का भलीभाँति अध्ययन करके भी   
अभव्य जीव प्रकृतिस्वभाव नहीं छोड़ता।***

एक वैज्ञानिक परमाणु बम बनाने के लिए अपने ज्ञान का दुरुपयोग   
करता है। **केवल ज्ञान प्राप्त करना महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उस ज्ञान   
का सही उपयोग करना अधिक महत्वपूर्ण है।**

⁕ **गाथा ३१८** ⁕

**निव्वेयसमावण्णो गाणी कम्मप्फलं वियागेदि।**

**महुरं कडुयं बहुविहमवेयओ तेण सो होइ॥ ३१८॥**

***किन्तु अनेकप्रकार के मीठे−कड़वे कर्मफलों को जानने के   
कारण निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त ज्ञानी उनका अवेदक ही है।***

जैसे एक सेल्समैन को अपने काउंटर पर कम या अधिक बिक्री के   
कारण कुछ भी फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि उसे पता है कि उसे कुछ भी   
खोना या पाना नहीं है। **ज्ञानी अलिप्त रहते हैं, अतः अभोक्ता रहते हैं।**

⁕ **गाथा ३१९** ⁕

**ण विकुव्व ण वि वेयइ गाणी कम्माई बहुपयाराई।**

**जाणइ पुणं कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च॥ ३१९॥**

***अनेक प्रकार के कर्मों को न तो ज्ञानी करता ही है और न   
भोगता ही है; किन्तु पुण्य−पाप रूप कर्मबंध को और कर्मफल को   
मात्र जानता ही है।***

जैसे छात्र परीक्षा देता है, तो उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होगा। अगर एक   
छात्र पढ़ाई नहीं करता है और परीक्षा नहीं देता है, तो उसे उत्तीर्ण या   
अनुत्तीर्ण होने की चिंता नहीं होगी। **अज्ञानी कर्मों को भोगता है, क्योंकि   
वह मानता है कि वह कर्म का कर्ता है। ज्ञानी कर्मों को भोगते नहीं   
हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि वे कर्मों से बँधे नहीं हैं।**

⁕ **गाथा ३२०** ⁕

**दिट्ठी जहेव गाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।**

**जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥ ३२०॥**

***जिसप्रकार दृष्टि (नेत्र) दृश्य पदार्थों को देखती ही है, उन्हें   
करती− भोगती नहीं है; उसीप्रकार ज्ञान भी अकारक व अवेदक है   
और बंध, मोक्ष, कर्मोदय और निर्जरा को मात्र जानता ही है।***

दर्पण के सामने लकड़ी, आग और लोहे का गोला है। लकड़ी जलती   
है और लोहे के गोले को गर्म करती है। अग्नि का कर्ता लकड़ी है और   
भोक्ता लोहे का गोला है। परन्तु दर्पण बिल्कुल प्रभावित नहीं होता है।   
**इसीप्रकार ज्ञानी दर्पण के समान हैं। वे बंध, मोक्ष एवं कर्म के उदय   
के ज्ञाता हैं, लेकिन उनके कर्ता या भोक्ता नहीं हैं।**

⁕ **गाथा ३२१−३२२−३२३** ⁕

**लोयस्स कुणदि वि०हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।**

**समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काऐ॥ ३२१॥**

**लोयसमणाणमेयं सिद्धतं जइ ण दीसदि विसेसो।**

**लोयस्स कुणइ विव्हू समणाण वि अप्पओ कुणदि॥ ३२२॥**

**एवं ण को वि मोक्खो दीसदि लोयसमणाणं दोन्ह पि।**

**णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए॥ ३२३॥**

***लौकिकजनों के मत में देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्य रूप   
प्राणियों को विष्णु करता है और यदि श्रमणों के मत में भी छहकाय   
के जीवों को आत्मा करता हो तो फिर तो लौकिकजनों और श्रम***

***णों का एक ही सिद्धान्त हो गया; क्योंकि उन दोनों की मान्यता   
में हमें कोई भी अन्तर दिखाई नहीं देता। लोक के मत में विष्णु   
करता है और श्रमणों के मत में आत्मा करता है। इसप्रकार दोनों की   
कर्तृत्व संबंधी मान्यता एक जैसी ही हुई। इसप्रकार देव, मनुष्य और   
असुरलोक को सदा करते हुए ऐसे वे लोक और श्रमण − दोनों का   
ही मोक्ष दिखाई नहीं देता।***

कुछ लोग मानते हैं कि विष्णु जीवों की रक्षा करते हैं। कुछ मुनि   
मानते हैं कि वे जीवों की रक्षा करते हैं। क्योंकि वे सावधानी से अपनी   
दैनिक दिनचर्या कर रहे हैं। इसलिए, वे मानते हैं कि वे स्वयं विष्णु हैं।   
**वास्तव में, भगवान जगत के कर्ता, धर्ता या हर्ता नहीं हैं। जगत में   
सभी द्रव्यों में अपना−अपना उत्पाद, ध्रौव्य एवं व्यय स्वभाव है।**

**विश्व में सभी द्रव्यों का अपना−अपना स्वभाव है।** उदाहरण   
के लिए, आग ऊपर जाती है, पानी नीचे की ओर बहता है और हवा   
तिरछी चलती है।

रेलवे स्टेशन में एक आटोमेटिक वजन की मशीन होती है और कोई   
महिला द्वारा संचालित वजन का काँटा होता है। ज्यादातर लोग आटोमेटिक   
वजन की मशीन को प्राथमिकता देते हैं, जिसमें उन्हें एक सिक्का डालना   
होता है। ज्यादातर लोग किसी व्यक्ति द्वारा संचालित मशीन की तुलना में   
आटोमेटिक मशीन पर अधिक भरोसा करते हैं। क्योंकि आटोमेटिक मशीन   
में सुनिश्चितता होती है, जबकि मानव संचालित मशीन में भूल या छल   
होने की संभावना है। इसलिए मनुष्यों में आटोमेटिक व्यवस्था पर अधिक   
विश्वास होता है। **विश्व आटोमेटिक है।**

⁕ **गाथा ३२४−३२५−३२६−३२७** ⁕

**ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भांति अविदिदत्था।**

**जाणंति णिच्छएण दु ग य मह परमाणुमित्तमवि किंचि॥ ३२४॥**

**जह को वि गरो जंपदि अम्हं गामविसयणयरर।**

**णय होंति जस्स ताणि द्र भगदि य मोहेण सो अप्पा॥ ३२५॥**

**एमेव मिच्छदिट्ठी गाणी णीसंसयं हवदि एसो।**

**जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि॥ ३२६॥**

**तम्हा ण मे त्ति णच्चा दोन्ह वि एदाण कत्तविवसायं।**

**परदव्वे जाणंतो जाणेज्जो दिट्ठिरहिदाणं॥ ३२७॥**

***वस्तुस्वरूप को नहीं जाननेवाले पुरुष व्यवहार कथन को ही   
परमार्थ रूप से ग्रहण करके ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है; परन्तु   
ज्ञानीजन निश्चय से ऐसा जानते हैं कि परमाणुमात्र परपदार्थ मेरा   
नहीं है। जिसप्रकार कोई मनुष्य इसप्रकार कहता है कि हमारा ग्राम,   
हमारा देश, हमारा नगर और हमारा राष्ट्र है; किन्तु वे उसके नहीं हैं;   
वह मोह से ही ऐसा कहता है कि वे मेरे हैं। इसीप्रकार यदि कोई ज्ञानी   
भी परद्रव्य को निजरूप करता है, परद्रव्य को निजरूप मानता है,   
जानता है तो ऐसा जानता हुआ वह नि:संदेह मिथ्यादृष्टी है। इसलिए   
परद्रव्य मेरे नहीं हैं − यह जानकर तत्त्वज्ञानीजन लोक और श्रमण −   
दोनों के पर−द्रव्य में कर्तृत्व के व्यवसाय को सम्यग्दर्शन रहित पुरुषों   
का व्यवसाय ही जानते हैं।***

कोई मूर्ख कहता है, कि मैं भारत देश अमेरिका को बेचना चाहता   
हूँ; जो संभव नहीं है। हम अपने घर पर अतिथि का स्वागत करते हुए कहते   
हैं कि ‘इसे अपना घर समझो और आराम से रहो।' हालाँकि, मेहमान हमारे   
घर पर कब्जा करने का दावा नहीं कर सकते। हमें **व्यवहारनय के कथन   
को यथार्थ नहीं मान लेना चाहिए।**

एक व्यक्ति भगवान को चढ़ाने के लिए उपहार लेकर मंदिर गया।   
जब वह वहाँ पहुँचा, तो द्वार पर चौकीदार ने उससे कहा कि वह अपनी   
भेंट बाहर छोड़ दें; तभी उसे भगवान के दर्शन हो सकेंगे। जब वह व्यक्ति

अपनी सब भेंट बाहर छोड़कर भीतर जाने लगा, तो चौकीदार ने उसे फिर   
से रोका। उस आदमी ने अब पूछा, “अब तो केवल मैं ही जा रहा हूँ, फिर   
तुम मुझे फिर से क्यों रोक रहे हो ?” चौकीदार ने उत्तर दिया, **“यहाँ तक   
कि ‘मैं’ भाव को भी बाहर छोड़कर बिना अहंभाव के अन्दर जाना   
चाहिए। तभी तुम भगवान को देख पाओगे।” अहंकारी व्यक्ति को   
मुक्ति नहीं मिलती।**

एक ऑफिस में सोने वाला व्यक्ति और दूसरा मंदिर में सोने वाला   
व्यक्ति, दोनों ही नींद में हैं। गृहस्थ एवं मिथ्यादृष्टी मुनि दोनों स्वयं को   
शरीर मानते हैं। **दोनों अज्ञानी हैं और वे मोक्ष नहीं पाते हैं।**

केशियर के पास बहुत सारा पैसा होता है, लेकिन वह अपनी   
तनख्वाह का ही मालिक होता है। **मैं जीवंत शरीर में आत्मा का   
मालिक हूँ, शरीर के एक भी परमाणु का नहीं।**

⁕ **गाथा ३२८−३२९−३३०−३३१** ⁕

**मिच्छत्तं जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पानं।**

**तम्हा अचेदणा ते पयडी गणु कारगो पत्तो॥ ३२८॥**

**अहवा एसो जीवो पोग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छतं।**

**तम्हा पोग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुणं जीवो॥ ३२९॥**

**अह जीवो पयडी तह पोग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं।**

**तम्हा दोहिं कदं तं दोग्णि विभुंजंति तस्स फलं॥ ३३०॥**

**अह ण पयडी ण जीवो पोग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।**

**तम्हा पोग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा॥ ३३१॥**

***मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व नामक कर्मप्रकृति आत्मा को   
मिथ्यादृष्टी करती है, बनाती है − यदि ऐसा माना जाये तो तुम्हारे मत***

***में अचेतनप्रकृति जीव के मिथ्यात्वभाव की कर्ता हो गई। इसकारण   
मिथ्यात्वभाव भी अचेतन सिद्ध होगा।***

**अथवा यह जीव पुद्‌गलद्रव्यरूप मिथ्यात्व को करता है −   
यदि ऐसा माना जाये तो पुद्‌गल द्रव्य मिथ्यादृष्टी सिद्ध होगा, जीव   
नहीं। अथवा जीव और प्रकृति − दोनों मिलकर दोनों मिलकर पुद्‌गलद्रव्य को   
मिथ्यात्वभावरूप करते हैं − यदि ऐसा माना जाये तो जो कार्य दोनों   
के द्वारा किया गया, उसका फल दोनों को ही भोगना होगा।**

**अथवा पुद्‌गलद्रव्य को मिथ्यात्वभावरूप न तो प्रकृति करती   
है और न जीव करता है अर्थात् दोनों में से कोई भी नहीं करता है −   
यदि ऐसा माना जाये तो पुद्‌गलद्रव्य स्वभाव से ही मिथ्यात्वभावरूप   
सिद्ध होगा।**

**क्या यह वास्तव में मिथ्या नहीं है ? इससे यही सिद्ध होता है   
कि अपने मिथ्यात्वभाव का कर्ता जीव स्वयं ही है।**

एक गाड़ी किसी महिला को टक्कर मारती है और तेजी से भाग जाती   
है। यह देखता हुआ मोटर साइकिल वाला, या तो महिला को अस्पताल   
ले जा सकता है या गाड़ी वाले के पीछे जाकर उसके साथ मारपीट कर   
सकता है। करुणा वाला व्यक्ति महिला को अस्पताल ले जाना चुनता है,   
जबकि आक्रामक व्यक्ति गाड़ी के ड्राईवर का पीछा करेगा। **हमें कर्म जैसे   
निमित्त को दोष न देकर स्वयं का निरीक्षण करके अपनी मान्यता को   
पलटना चाहिए।**

एक धूल का कण किसी व्यक्ति की आँख में गिरता है और वह   
पड़ोसी के घर पर बैठा होने से उन्हें दोष देता है। वास्तव में उसे तो बस   
धूल के कण को हटाना है। यदि पड़ोसी के कारण कण गिरा होता, तो   
पड़ोसी को भी असर करना चाहिए था। हमें **कर्म को दोष न देकर अपनी   
मान्यता को पलटना चाहिए। यदि कर्म के कारण दुःख होता, तो   
कर्म स्वयं ही मिथ्यादृष्टी हो जाते।**

यदि पड़ोसी और वह व्यक्ति स्वयं दोनों के कारण रजकण आँख में गिरा   
होता, तो दोनों को असर होना चाहिए। **यदि जीव और कर्म दोनों बंधन   
के कर्ता होते, दोनों को भोगना चाहिए। परन्तु सिर्फ जीव ही भोगता   
है, क्योंकि वही मिथ्यादृष्टी है और नए कर्मबंधन का कारण है।**

जैसे पीलिया से पीड़ित मरीज को बीमारी के कारण पीला दिखाई   
देता है। **ऐसे ही आत्मा और सारे जगत के सम्बन्ध में मिथ्यादृष्टी की   
मान्याताएँ झूठी हैं।**

⁕ **गाथा ३३२ से ३४४** ⁕

**कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि गाणी तहेव कम्मेहिं।**

**कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि वहेव कम्मेहिं॥ ३३२॥**

**कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं।**

**कम्मेहिं यमिच्छत्तं णिज्जदि गिज्जदि असंजमं चेव॥ ३३३॥**

**कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमहो चावि तिरियलोयं च।**

**कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुहं जेत्तियं किंचि॥ ३३४॥**

**जम्हा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदि हरदि त्ति जं किंचि।**

**तम्हा उ सव्वजीवा अकारगा होंति आवण्णा॥ ३३५॥**

**पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि।**

**एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी॥ ३३६॥**

**तम्हा ण को वि जीवो अबंभचारी दु अम्ह उवदेसे।**

**जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि इदि भणिदं॥ ३३७॥**

**जम्हा घादेदि परं परेण घादिज्जदे य सा पयडी।**

**एदेणत्थेण किर भण्णदि परघादणामेति॥ ३३८॥**

**तम्हा ण को वि जीवो वघादेओ अत्थि अम्ह उवदेसे।**

**जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं घादेदि इवि भणिदं॥ ३३९॥**

**एवं संखुवएसं जे उ परूवेंति एरिसं समणा।**

**तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे॥ ३४०॥**

**अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि।**

**एसो मिच्छसहावो तुम्हं एयं मुनंतस्स॥ ३४१॥**

**अप्पा णिच्चोऽसंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि।**

**ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहिओ य कार्टु जे॥ ३४२॥**

**जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोगमेत्तं खु।**

**तत्तो सो किं हीणो अहिओ य कहं कुणदि दव्वं॥ ३४३॥**

**अह जाणगो दु भावो गाणसहावेण अच्छदे त्ति मदं।**

**तम्हा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि॥ ३४४॥**

***जीव कर्मों द्वारा अज्ञानी किया जाता है और कर्मों द्वारा ही   
ज्ञानी भी किया जाता है, कर्मों द्वारा सुलाया जाता है और कर्मों   
द्वारा ही जगाया जाता है, कर्मों द्वारा ही सुखी किया जाता है और   
कर्मों द्वारा ही दुःखी किया जाता है; कर्म ही उसे मिथ्यात्व को प्राप्त   
कराते हैं और कर्म ही असंयमी बनाते हैं। इस जीव को कर्मों द्वारा ही   
ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक का भ्रमण कराया जाता है।   
अधिक क्या कहें, जो कुछ भी शुभ और अशुभ है, वह सब कर्म ही   
करते हैं। इसप्रकार कर्म ही करता है, कर्म ही देता है और कर्म ही हर   
लेता है; जो कुछ भी करता है, वह सब कर्म ही करता है। इसप्रकार   
सभी जीव सर्वथा अकारक ही सिद्ध होते हैं।***

**पुरुषवेद कर्म स्त्री का अभिलाषी है और स्त्रीवेद कर्म पुरुष   
की अभिलाषा करता है − ऐसी यह आचार्यों की परम्परागत श्रुति**

**है। इसप्रकार हमारे उपदेश में तो कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं है;   
क्योंकि कर्म ही कर्म की अभिलाषा करता है − ऐसा कहा है।**

**जो पर को मारता है और जो पर के द्वारा मारा जाता है; वह   
प्रकृति है, जिसे परघात नामक कर्म कहा जाता है। इसलिए हमारे   
उपदेश में कोई जीव उपघातक (मारनेवाला) नहीं है; क्योंकि कर्म   
ही कर्म को मारता है − ऐसा कहा गया है। ऐसे सांख्यमत का उपदेश   
जो श्रमण (जैन मुनि) प्ररूपित करते हैं, उनके मत में प्रकृति ही   
करती है; आत्मा तो पूर्णतः अकारक है − ऐसा सिद्ध होता है।**

**अथवा यदि तुम यह मानते हो कि मेरा आत्मा अपने द्रव्यरूप   
आत्मा को करता है तो तुम्हारा यह मानना मिथ्या है; क्योंकि सिद्धान्त   
में आत्मा को नित्य और असंख्यातप्रदेशी बताया गया है, वह उससे   
हीन या अधिक नहीं हो सकता और विस्तार की अपेक्षा भी जीव को   
जीवरूप निश्चय से लोकमात्र जाने; क्या वह उससे हीन या अधिक   
होता है; यदि नहीं तो फिर वह द्रव्य को कैसे करता है ?**

**अथवा ज्ञायकभाव तो ज्ञानस्वभाव में स्थित रहता है − यदि   
ऐसा माना जाये तो इससे आत्मा स्वयं अपने आत्मा को नहीं करता   
− यह सिद्ध होगा।**

कुछ मित्र बालक वर्धमान से मिलने आते हैं। वे उनकी माँ को पहली   
मंजिल पर मिले, जो उन्हें बताती है कि वह ऊपर है। फिर वे सातवीं मंजिल   
पर उसके पिता से मिलते हैं और वे बताते हैं कि वह नीचे है। वर्धमान   
वास्तव में चौथी मंजिल पर थे। माता और पिता दोनों ही अपने आप में   
सही हैं। **किसी भी वचन के भाव को समझने के लिए अनेकांतवाद   
को जानना चाहिए।**

आपके द्वारा स्वयं लगाई गई एक अलार्म घड़ी सुबह आपको जगाती   
है। **आप स्वयं ही स्वयं के भावों से बंधे कर्मों के फल भोगते हैं। बस   
कर्म कुछ नहीं करते।**

ताश खेलने वाले चार लोगों को सहज रूप से 13 पत्ते मिलते हैं।   
आपको मिलने वाले पत्ते आपके नियंत्रण में नहीं होते हैं, लेकिन कैसे   
खेलना, आपके नियंत्रण में है। **हमें संयोगों को दोषी नहीं ठहराना   
चाहिए; बस, पुरुषार्थ आपके हाथ में है।**

जो भोजन परोसा जाता है, वह आप खाएँ या नहीं, वह आपकी   
अपनी पसंद पर निर्धारित है। **हमें कर्म को दोष नहीं देना चाहिए लेकिन   
हमें पुरुषार्थ करके मलिन भावों को दूर करके आत्मानुभूति प्रकट   
करना चाहिए।**

निमित्त कारण कार्य रूप परिणमित नहीं होता है। घड़ा बनने में कुम्हार   
निमित्त कारण है। वह स्वयं घड़े रूप परिणमित नहीं होता। रोटी बनने में   
बाई निमित्त कारण है। वह स्वयं रोटी रूप परिणमित नहीं होती। **जीव के   
मिथ्यात्व के लिए कार्माण वर्गणा निमित्त कारण है। कार्माण वर्गणा   
स्वयं मिथ्यात्व रूप परिणमित नहीं होती।**

किसी व्यक्ति का सुबह−सुबह प्रवचन में भाग लेने का मन नहीं   
करता, मगर यदि उसे सुबह−सुबह विमान पकड़ना हो, तो वह आलसी   
नहीं होगा। **जो होना है, वही होगा। इसप्रकार बोलकर और वर्तन   
करके प्रमादी नहीं होना चाहिए। आपको जो कर्मबंधन हुआ है, वह   
आपके कारण हुआ है। आपके पुरुषार्थ से ही वह बंधन छूट सकता   
है, अतः आपको प्रमादी नहीं होना चाहिए।**

जो रुपये बैंक में जमा किए गए हैं, वे भविष्य में चेक द्वारा बाहर   
निकाले जा सकते हैं। चेक सिर्फ माध्यम है। जैसे कोई व्यक्ति अपराध   
करता है और पुलिसकर्मी द्वारा जेल ले जाया जाता है। पुलिस सिर्फ माध्यम   
है। **आपके भावों से ही कर्म का फल है। आत्मा स्वयं के भावों के   
फल में सभी संयोग पाता है। कर्म सिर्फ माध्यम है।**

**निश्चयनय कहता है कि कुछ भी तुम्हारा नहीं है।** कोई व्यक्ति   
किसी भी पराई वस्तु को उठा नहीं सकता और न ही पराई स्त्री को छू

सकता है। **परन्तु व्यवहारनय की भी महत्ता है, अन्यथा मनुष्य पशु   
के समान हो जाएगा।**

भले ही पानी, सिर्फ पानी हो, फिर भी वाशबेसिन और शौचालय में   
पानी अलग−अलग तरह से उपयोग किया जाता है। **ऐसे ही निश्चयनय   
से सभी आत्माएँ समान हैं, ऐसा श्रद्धान में हों, चारित्र में नहीं।**

व्यवहार से चीनी दुकान में है, कार में है, मेज पर है, आपके मुँह में   
है, आपके पेट में है। निश्चय से चीनी वहाँ है, जहाँ मिठास है। **व्यवहार   
से आत्मा विश्व में है, पृथ्वी पर है, भारत में है, मुंबई में है, शरीर में   
है। निश्चय से आत्मा वहाँ है, जहाँ ज्ञान है।**

एक आदमी कुत्ते, शेर और कछुए पर डंडे से हमला करता है। कुत्ता   
डंडे को काटता है, शेर आदमी को काटता है और कछुआ अपने मुँह को   
सिकोड़कर अन्दर कर लेता है। **अज्ञानी संयोग या कर्मों को दोष देता   
है। ज्ञानी संयोग या कर्मों से उपयोग हटाकर अंतर्मुख हो जाते हैं।**

⁕ **गाथा ३४५−३४६−३४७−३४८** ⁕

**केहिंचि दुपज्जएहिं विणस्साए गेव केहिंचि दु जीवो।**

**जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो॥ ३४५॥**

**केहिंचि दु पज्जएहिं विंगस्सए व केहिंचि दु जीवो।**

**जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो॥ ३४६॥**

**जो चेव कुणदि सो चिय न वेदए जस्स एस सिद्धंतो।**

**सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो॥ ३४७॥**

**अण्णो करेदि अण्णो परिभुजदि जस्स एस सिद्धंतो।**

**सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो॥ ३४८॥**

***क्योंकि जीव कितनी ही पर्यायों से नष्ट होता है और कितनी   
ही पर्यायों से नष्ट नहीं होता है; इसलिए जो भोगता है, वही करता   
है या अन्य ही करता है − ऐसा एकान्त नहीं है। क्योंकि जीव कितनी   
ही पर्यायों से नष्ट होता है और कितनी ही पर्यायों से नष्ट नहीं होता   
है; इसलिए जो करता है, वही भोगता है अथवा अन्य ही भोगता   
है − ऐसा एकान्त नहीं है।***

**जो करता है, वह नहीं भोगता − ऐसा जिसका सिद्धान्त है;   
वह जीव मिथ्यादृष्टी है और अरिहंत के मत के बाहर है, अनार्हत   
मतवाला है − ऐसा जानना चाहिए।**

**अन्य करता है और उससे अन्य भोगता है − ऐसा जिसका   
सिद्धान्त है; वह जीव मिथ्यादृष्टी है और अरिहंत के मत के बाहर है,   
अनार्हत मतवाला है। − ऐसा जानना चाहिए।**

अनेक दृष्टिकोणों से कौवा काला, लाल और पीला होता है।   
उसकी त्वचा काली है, उसका खून लाल है और उसका थूक पीला है।   
**पर्यायदृष्टि से आत्मा अनित्य है और द्रव्यदृष्टि से नित्य है।**

जैसे कैदी अपने ही अपराध के कारण जेल में है। वह दूसरों को दोष   
नहीं दे सकता। **ऐसे ही आत्मा संसार परिभ्रमण का दोष कर्म को नहीं   
दे सकता।**

रात्रि में 100 मेहमानों वाली पार्टी में भोजन परोसा गया। 5 लोग,   
सूर्यास्त के बाद खाना नहीं खाते थे, इसलिए रात्रि में खाना नहीं खाया।   
उस रात खाने वाले शेष 95 लोगों की मृत्यु हुई, क्योंकि अंधेरे में भोजन   
में जहरीले कीड़े गिर गए थे। **सभी को अपने−अपने कर्मों का फल   
भोगना पड़ता है।**

मेहनती आदमी को अच्छा वेतन नहीं मिलता, जबकि जो आदमी   
काम नहीं करता उसे मेहनती आदमी जैसा वेतन मिलता है। फिर वह काम   
क्यों करे? **अगर एक आत्मा पुरुषार्थ करे और उसका फल दूसरे लोग   
भोगे, फिर वह पुरुषार्थ क्यों करे?**

मनुष्य नरक में जाकर मनुष्य द्वारा बाँधे गए कर्मों को भोगता है।   
यह मान्यता मिथ्या है। **आत्मा एक ही है और स्वयं को स्वयं के कर्म   
भोगने पड़ते हैं। कर्ता और भोक्ता एक ही है। यह मान्यता सम्यक् है।**

⁕ **गाथा ३४९ से ३५५** ⁕

**जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि न य सो दु तम्मओ होदि।**

**तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि न य तम्मओ होदि॥ ३४९॥**

**जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि न य सो दु तम्मओ होदि।**

**तह जीवो करणेहिं कुव्वदि न य तम्मओ होदि॥ ३५०॥**

**जह सिप्पिओ दु करणाणि गिव्हदि न सो दु तम्मओ होदि।**

**तह जीवो करणाणि दु गि。हदि न य तम्मओ होदि॥ ३५१॥**

**जह सिप्पि दु कम्मफलं भुंजदि ण य सो दु तम्मओ होदि।**

**तह जीवो कम्मफलं भुंजदि न य तम्मओ होदि॥ ३५२॥**

**एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दरिसणं समासेण।**

**सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि॥ ३५३॥**

**जह सिप्पिओ दु चेट्टं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो से।**

**तह जीवो वि य कम्मं कुवदि हवदि य अणण्णो से॥ ३५४॥**

**जह चेट्टं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्चदुक्खिओ होदि।**

**तत्तो सिया अगण्णो तह चेट्टंतो दुही जीवो॥ ३५५॥**

***जिसप्रकार शिल्पी (कलाकार−सुनार) कुण्डल आदि कार्य   
(कर्म) करता है; किन्तु कुण्डलादि को बनाते समय वह उनसे तन्मय   
नहीं होता, उनरूप नहीं होता; उसीप्रकार जीव भी पुण्य−पापादि***

***पुद्‌गल कर्मों को करता है; परन्तु उनसे तन्मय नहीं होता, उनरूप   
नहीं होता।***

**जिसप्रकार शिल्पी हथौड़ा आदि करणों (साधनों) से कर्म करता   
है; परन्तु वह उनसे तन्मय नहीं होता; उसीप्रकार जीव मन−वचन−  
कायरूप करणों से कर्म करता है; परन्तु उनसे तन्मय नहीं होता।**

**जिसप्रकार शिल्पी करणों को ग्रहण करता है, परन्तु उनसे   
तन्मय नहीं होता; उसीप्रकार जीव करणों को ग्रहण करता है, पर   
उनसे तन्मय (करणमय) नहीं होता।**

**जिसप्रकार शिल्पी कुण्डल आदि कर्म के फल को भोगता है;   
परन्तु वह उससे तन्मय नहीं होता; उसीप्रकार जीव भी पुण्य−पापादि   
पुद्‌गलकर्म के फल को भोगता है; परन्तु तन्मय (पुद्‌गलपरिणाम   
रूप सुखदुःखादिमय) नहीं होता।**

**इसप्रकार व्यवहार का मत संक्षेप में दर्शाया। अब परिणाम   
विषयक निश्चय का मत (मान्यता) सुनो।**

**जिसप्रकार शिल्पी चेष्टारूप कर्म करता है और वह उससे   
अनन्य है; उसीप्रकार जीव भी अपने परिणामरूप कर्म को करता है   
और वह जीव उस अपने परिणामरूप कर्म से अनन्य है।**

**जिसप्रकार चेष्टारूप कर्म करता हुआ शिल्पी नित्य दुःखी   
होता है; उसीप्रकार अपने परिणामरूप चेष्टा को करता हुआ जीव   
भी दुःखी होता है, दुःख से अनन्य है।**

कुम्हार घड़ा बनाता है, लेकिन वह स्वयं घड़ेरूप परिणमित नहीं   
होता। **उसीतरह आत्मा कर्म को बाँधता है लेकिन वह स्वयं कर्मरूप   
परिणमित नहीं होता।**

जिसका मुँह कड़वा होगा, उसको सब स्वाद कड़वा ही आएगा।   
**मिथ्यादृष्टी मानता है कि सारा जगत मिथ्या है।**

भारत और अमेरिका दो अलग−अलग देश हैं। भारत और पाकिस्तान   
कभी एक थे, परन्तु अब अलग देश हैं। **आत्मा और पुद्‌गल दोनों भारत   
और अमेरिका के समान हैं।** यदि कोई भारतीय माने कि अमेरिका उसका   
है, तो वह मान्यता झूठी है। इसीतरह, जो आत्मा यह मानता है कि पुद्‌गल   
द्रव्य उसका है, यह भी मिथ्या मान्यता है।

कोई व्यक्ति पत्थरों पर चलता है, लेकिन दर्द नहीं होता। हालाँकि,   
यदि उसके जूते में पत्थर होते, तो उसे दर्द होता। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं   
दुःखी होने का यथार्थ कारण जानना चाहिए। **आत्मा को स्वयं की मिथ्या   
मान्यता से मुक्त होना चाहिए।**

⁕ **गाथा ३५६ से ३६५** ⁕

**जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।**

**तह जाणगो दुण परस्स जागो जागो सो दु॥ ३५६॥**

**जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।**

**तह पासगो दु ण परस्स पासगो पासगो सो दु॥ ३५७॥**

**जह सेडिया दुण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।**

**तह संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु॥ ३५८॥**

**जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।**

**तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु॥ ३५९॥**

**एवं तु निच्छयणयस्स भासिदं गाणदंसणचरिते।**

**सुणु ववहारणयस्य य वत्तव्वं से समासेण॥ ३६०॥**

**जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**

**तह परदव्वं जागदि गादा वि सएण भावेण॥ ३६१॥**

**जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**

**तह परदव्वं पस्सदि जीवो वि सएण भावेण॥ ३६२॥**

**जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**

**तह परदव्वं विजहदि गादा वि सएण भावेण॥ ३६३॥**

**जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।**

**तह परदव्वं सद्दहदि सम्मदिट्ठी सहावेण॥ ३६४॥**

**एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ गाणदंसणचरिते।**

**भणिदो अण्णेसु वि पज्जएस एमेव नादव्वो॥ ३६५॥**

***यद्यपि व्यवहार से परद्रव्यों का और आत्मा का ज्ञेय−ज्ञायक   
संबंध है; दृश्य−दर्शक संबंध है, त्याज्य−त्याजक संबंध है; तथापि   
निश्चय से तो वस्तुस्थिति इसप्रकार है − जिसप्रकार सेटिका अर्थात्   
खड़िया मिट्टी या पोतने का चूना या कलई पर (दीवाल) की नहीं   
है; क्योंकि सेटिका (कलई) तो सेटिका ही है; उसीप्रकार ज्ञायक   
आत्मा तो ज्ञेयरूप परद्रव्यों का नहीं है, ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।***

**जिसप्रकार कलई पर की नहीं है, कलई तो कलई ही है;   
उसीप्रकार दर्शक पर का नहीं है, दर्शक तो दर्शक ही है। जिसप्रकार   
कलई पर की नहीं है, कलई तो कलई ही है; उसीप्रकार संयत (पर का   
त्याग करनेवाला) पर का नहीं है, संयत तो संयत ही है। जिसप्रकार   
कलई पर की नहीं है, कलई तो कलई ही है; उसीप्रकार दर्शन (श्रद्धान)   
पर का नहीं है, दर्शन तो दर्शन ही है अर्थात् श्रद्धान तो श्रद्धान ही है।**

**इसप्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के संदर्भ में निश्चयनय का   
कथन है और अब उस संबंध में संक्षेप से व्यवहारनय का कथन सुनो।**

**जिसप्रकार कलई अपने स्वभाव से दीवाल आदि परद्रव्यों को   
सफेद करती है; उसीप्रकार ज्ञाता भी अपने स्वभाव से परद्रव्यों को**

**जानता है। जिसप्रकार कलई अपने स्वभाव से दीवाल आदि परद्रव्यों   
को सफेद करती है; उसीप्रकार जीव अपने स्वभाव से परद्रव्यों को   
देखता है। जिसप्रकार कलई अपने स्वभाव से दीवाल आदि परद्रव्यों   
को सफेद करती है; उसीप्रकार ज्ञाता भी अपने स्वभाव से परद्रव्यों   
को त्यागता है। जिसप्रकार कलई अपने स्वभाव से दीवाल आदि   
परद्रव्यों को सफेद करती है; उसीप्रकार सम्यग्दृष्टी अपने स्वभाव   
से परद्रव्यों का श्रद्धान करता है। इसप्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र   
में व्यवहारनय का निर्णय कहा है। अन्य पर्यायों में भी इसीप्रकार   
जानना चाहिए।**

10 रुपये के दर्पण में करोड़ों रुपये का महल प्रतिबिम्बित होने पर   
भी दर्पण का मूल्य वही रहता है। फिर दर्पण में कचरापेटी प्रतिबिम्बित होने   
पर भी दर्पण का मूल्य वही रहता है। दर्पण महल में या कचरापेटी में मिल   
नहीं जाता। **ज्ञान में ज्ञेय प्रतिबिम्बित होने पर भी ज्ञान ज्ञेयों में मिल   
नहीं जाता। वह जैसा है, वैसा ही रहता है।**

अपनी गाड़ी के दर्पण में वहाँ गुजरती अनेक गाड़ियाँ प्रतिबिम्बित   
होती हैं। हालाँकि, दर्पण प्रतिबिम्बित होती गाड़ियों का मालिक नहीं बनता   
है। **आत्मा के ज्ञान में परिणाम एवं पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, फिर   
भी वे ज्ञान के नहीं हो जाते हैं।**

एक ग्राहक किसी दुकान पर दर्पण खरीदने जाता है। वह दर्पण चुनकर   
उसमें प्रतिबिम्बित अपना चेहरा देखता है। हालाँकि दुकानदार मानता है कि   
दर्पण ग्राहक का नहीं हो गया है। फिर ग्राहक दर्पण के रुपये चुका देता है   
और दुकानदार को पैक करने के लिए कहता है। अब दुकानदार का चेहरा   
दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन ग्राहक का मानना है कि दुकानदार   
अब उस दर्पण का मालिक नहीं है। **ज्ञान की यथार्थ श्रद्धा जीव को   
चिंता मुक्त बना देती है।**

दर्पण में प्रतिबिम्बित एक प्याला टूट जाता है। हालाँकि, दर्पण वैसा   
ही रहता है। **जिस ज्ञान में वस्तुओं या भावों को प्रतिबिम्बित होना**

**होता है, वह आत्मा का ज्ञान निरंतर पलटता रहता है। हालाँकि   
आत्मा का ज्ञान वस्तुओं और भावों के प्रतिबिम्बित होने के कारण   
नहीं पलटता।**

**व्यवहारनय से आत्मा के ज्ञान में वस्तु और भाव प्रतिबिम्बित   
होते हैं। निश्चयनय से ज्ञान एवं वस्तु या भाव मिलते नहीं हैं।**

⁕ **गाथा ३६६ से ३७१** ⁕

**दंसणणाणचरितं किंचि वि णत्थि टू अचेदने विसए।**

**तम्हा किं घादयदे चेदयिंदा तेसु विसएस॥ ३६६॥**

**दंसणणाणचरितं किंचि वि णत्थि द अचेदने कम्मे।**

**दु तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तम्हि कम्मम्हि॥ ३६७॥**

**दंसणणाणचरितं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काए।**

**तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कासु॥ ३६८॥**

**णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरितस्स।**

**ण वि तहिं पोग्गलदव्वस्स को वि घादो दु निद्दिट्ठो॥ ३६९॥**

**जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।**

**तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु॥ ३७०।।**

**रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।**

**एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी॥ ३७१॥**

***दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन विषयों में किंचित्मात्र भी   
नहीं हैं, इसलिए आत्मा उन विषयों में क्या घात करेगा ? इसीप्रकार   
दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन कर्मों में भी किंचित्मात्र नहीं हैं;***

***इसलिए आत्मा उन कर्मों में भी क्या घात करेगा ? इसीप्रकार दर्शन,   
ज्ञान और चारित्र अचेतन काय में भी किंचित्मात्र नहीं हैं; इसलिए   
आत्मा उन कायों में भी क्या घात करेगा ? जहाँ दर्शन, ज्ञान और   
चारित्र का घात कहा है; वहाँ पुद्‌गलद्रव्य का किंचित्मात्र भी घात   
नहीं कहा है। तात्पर्य यह है कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र के घात होने   
पर पुद्‌गलद्रव्य का घात नहीं होता। इसप्रकार जो जीव के गुण हैं;   
वे वस्तुतः परद्रव्य में नहीं हैं; इसलिए सम्यग्दृष्टी का विषयों के प्रति   
राग नहीं होता। और राग−द्वेष−मोह जीव के ही अनन्य परिणाम हैं;   
इसकारण रागादिक शब्दादि विषयों में नहीं हैं।***

सिर, धड़, आदि अवयवों का समूह शरीर है। कोई व्यक्ति सुबह   
घूमने जाना चाहता है। परन्तु उसे सिरदर्द होने से पूरे शरीर को घर पर रहना   
पड़ता है, क्योंकि वे एक साथ हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता   
है। अन्य दोस्त अभी भी घूमने जाते हैं। दूसरों के शरीर का अपने शरीर के   
किसी भी अंग के साथ कोई संबंध नहीं है। **आत्मा में ज्ञान, श्रद्धा और   
चारित्र गुण हैं। यदि आत्मा की श्रद्धा झूठी हो, तो आत्मा को संसार   
में भटकना पड़ता है, क्योंकि सभी गुण अभेद हैं। आत्मा के गुणों   
का पुद्‌गल पर कोई असर नहीं होता। अतः शरीर की मृत्यु होने से   
आत्मा की मृत्यु नहीं हो जाती।**

अशुद्ध सोना गर्म करने पर सोना और उसकी अशुद्धियाँ अलग−  
अलग हो जाती हैं। सोना स्वयं अशुद्धियों को नष्ट नहीं करता है। **निजात्मा   
के ध्यान से आत्मा और कर्म अलग−अलग हो जाते हैं, आत्मा स्वयं   
कर्मों को नष्ट नहीं करता है।**

4D फिल्म में ऐसा लगता है, जैसे कि सब कुछ सत्य है। वास्तव में   
वह भ्रम है। **इसीतरह आत्मा दूसरे जीव को मार नहीं सकता और दूसरे   
जीव आत्मा द्वारा मारे नहीं जा सकते।**

किसी गाँव में एक भिखारी 30 साल तक एक ही जगह बैठ कर   
भीख माँगता रहा। भिखारी बूढ़ा हो गया। जहाँ वह बैठता था, वहाँ सब

जगह बहुत गंदगी और बदबू आती थी। जब भिखारी मर गया और उसके   
सारे कपड़ों के साथ उसका अंतिम संस्कार किया गया, उस जगह पर अभी   
भी बदबू आ रही थी। उस बदबू को दूर करने के लिए गाँव के लोगों ने   
वहाँ गड्ढा खोदने का फैसला लिया और उन्हें गड्ढे में सोने और हीरे का   
खजाना मिला। **अज्ञानी दूसरों से सुख पाने की आशा करता है। ज्ञानी   
को बाह्य वस्तुओं में सुख की आशा नहीं होती, क्योंकि उन्होंने स्वयं   
में ही आनन्द का अनुभव किया है।**

शास्त्रीय संगीत को हर कोई पसंद नहीं करता है। केवल शास्त्रीय   
संगीत के रसिक को ही वह पसंद आएगा। सभी लोगों को अंकशास्त्र में   
दिलचस्पी नहीं होती है। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति का मोबाइल नम्बर सही   
क्रम में होना चाहिए। कोई भी वस्तु आत्मा को उसमें फंसाती नहीं है। **बस,   
आत्मा स्वयं ही स्वयं की कमजोरी से फंस जाता है।**

⁕ **गाथा ३७२** ⁕

**अण्णदविएण अण्णदवियस्स गो कीरए गुगुप्पाओ।**

**तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावे॥ ३७२॥**

***अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के गुणों की उत्पत्ति नहीं की जा   
सकती है; इससे यह सिद्धान्त प्रतिफलित होता है कि सर्व द्रव्य   
अपने−अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।***

कोई भी महिला बिल्कुल एक जैसी रोटी नहीं बना सकती, भले ही   
वह चाहती है कि सभी समान आकार−प्रकार की हों। एक अध्यापक कई   
छात्रों को पढ़ाते हैं, लेकिन वे सभी छात्र परीक्षा में एक जैसा प्रदर्शन नहीं   
करते हैं। उनके परिणाम उनके स्वयं की मेहनत पर निर्भर हैं। **आत्मा किसी   
अन्य द्रव्य का कर्ता या निर्माता नहीं है।**

⁕ **गाथा ३७३ से ३८२** ⁕

**निंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।**

**तानि सुणिदूण रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो॥ ३७३॥**

**पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिंगदं तस्स जदि गुणो अण्णो।**

**तम्हाण तुमं भणिदो किंचि वि किं रूससि अबुद्धो॥ ३७४॥**

**असुहो सुहो व सद्दोग तं भगदि सुणसु मं ति सो चेव।**

**न य एदि विणिग्गहिंदु सोदविसयमागदं सद्दं॥ ३७५॥**

**असुहं सुहं व रूवं न तं भणदि पेच्छ मं ति सो चेव।**

**न य एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रुवं॥ ३७६॥**

**असुहो सुहो व गंधो न तं भगदि जिग्ध मं ति सो चेव।**

**णय एदि विणिग्गहिंदु घाणविसयमागदं गंधं॥ ३७७॥**

**असुहो सुहो व रसो न तं भणदि रसय मं ति सो चेव।**

**ण य एदि विणिग्गहिंदु रसणविसयमागदं तु रसं॥ ३७८॥**

**असुहो सुहो व फासो न तं भगदि फुससु मं ति सो चेव।**

**ण य एदि विणिग्गहिदु कायविसयमागदं फास॥ ३७९॥**

**असुहो सुहो व गुणो न तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।**

**णय एदि विणिग्गहिदु बुद्धिविसयमागदं तु गुणं॥ ३८०॥**

**असुहं सुहं व दव्वं न तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।**

**णय एदि विणिग्गहिदूं बुद्धिविसयमागदं दव्वं॥ ३८१॥**

**एयं तु जाणिऊणं उवसमं णेव गच्छदे मूढो।**

**गिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो॥ ३८२॥**

***पौद्गलिक भाषावर्गणायें बहुत प्रकार से निन्दारूप और   
स्तुतिरूप वचनों में परिणमित होती हैं। उन्हें सुनकर अज्ञानी जीव   
‘ये वचन मुझसे कहे गये हैं’ − ऐसा मानकर रुष्ट (नाराज) होते   
हैं और तुष्ट (प्रसन्न ) होते हैं। शब्दरूप परिणमित पुद्‌गलद्रव्य और   
उसके गुण यदि तुझसे भिन्न हैं तो हे अज्ञानी जीव ! तुझसे तो कुछ भी   
नहीं कहा गया, फिर भी तू रोष क्यों करता है ? शुभ या अशुभ शब्द   
तुझसे यह नहीं कहते कि तू हमें सुन और आत्मा भी अपने स्थान   
से च्युत होकर कर्ण इन्द्रिय के विषय में आये हुए शब्दों को ग्रहण   
करने (जानने) को नहीं जाता। इसीप्रकार शुभ या अशुभ रूप यह   
नहीं कहता कि मुझे देख और आत्मा भी चक्षु इन्द्रिय के विषय में   
आये हुए रूप को ग्रहण करने नहीं जाता। शुभ और अशुभ गंध भी   
तुझसे यह नहीं कहती कि तू मुझे सूँघ और आत्मा भी प्राण इन्द्रिय   
के विषय में आयी हुई गंध को ग्रहण करने नहीं जाता। इसीप्रकार   
शुभ या अशुभ रस तुझसे यह नहीं कहते कि तुम हमें चखो और   
आत्मा भी रसना इन्द्रिय के विषय में आये हुए रसों को ग्रहण करने   
नहीं जाता। शुभ या अशुभ स्पर्श तुझसे यह नहीं कहते कि तुम हमें   
स्पर्श करो और आत्मा भी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में आये हुए   
स्पर्शों को ग्रहण करने नहीं जाता। इसीप्रकार शुभ या अशुभ गुण   
तुझसे यह नहीं कहते कि तू हमें जान और आत्मा भी बुद्धि के विषय   
में आये हुए गुणों को ग्रहण करने नहीं जाता। शुभ या अशुभ द्रव्य   
तुझसे यह नहीं कहते कि तू हमें जान और आत्मा भी बुद्धि के विषय   
में आये हुए द्रव्यों को ग्रहण करने नहीं जाता। ऐसा जानकर भी यह   
मूढ़ जीव उपशमभाव को प्राप्त नहीं होता और कल्याणकारी बुद्धि   
को − सम्यग्ज्ञान को प्राप्त न होता हुआ स्वयं परपदार्थों को ग्रहण   
करने का मन करता है।***

एक आदमी किसी महिला को गाली दे रहा था। वह बहुत शांत रही।   
उस आदमी ने पूछा कि तुम्हें गालियों का असर क्यों नहीं होता है? वह

महिला उस आदमी को अपने घर ले जाती है और उसे बहुत पुराने और   
बदबूदार कपड़े देती है और उसे पहनने के लिए कहती है। उस आदमी ने   
कहा कि वह उन्हें नहीं पहनेगा। वह महिला उससे कहती है, “ जिस तरह   
तुम मेरे गंदे कपड़े स्वीकार नहीं करते, उसी तरह मैं तुम्हारे गंदे शब्दों को   
स्वीकार नहीं करती।” **यदि आपको स्वयं में ही तृप्ति प्राप्त हुई हो, तो   
किसी की प्रशंसा या निंदा का आप पर कोई असर नहीं होगा।**

किसी गाँव के लोगों से घिरे हुए एक संत पर बहुत गालियाँ बरस   
रही थी, फिर भी संत को कोई फर्क नहीं पड़ता था। उसने कहा कि वह   
अभी−अभी एक गाँव से आया है जहाँ गाँव वालों ने उसे मिठाई भेंट   
की। परन्तु पेट भरा होने के कारण उसने मिठाई स्वीकार नहीं की। फिर   
वही मिठाई उनके परिवारजनों को वितरित की गयी। चाय से भरे हुए कप   
में और अधिक कुछ नहीं डाला जा सकता। **जिसे यह अनुभव हुआ हो   
कि आत्मा आनन्द से भरपूर है, उसे किसी भी शब्द से कोई फर्क   
नहीं पड़ेगा।**

एक बिच्छू पानी में गिर गया, तो कोई आदमी उसे बचा रहा था।   
तभी बिच्छू आदमी को काटता है। जब बिच्छू फिर पानी में गिरता, तो   
यह आदमी उसे फिर से बचाता था। किसीने उससे पूछा कि वह ऐसा   
क्यों कर रहा है? उसने कहा कि बिच्छू का स्वभाव काटना है और मेरा   
स्वभाव जीवों को बचाना है और यदि वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है,   
तो मैं मनुष्य होकर अपने स्वभाव को कैसे छोड़ दूँ? **हमें किसी के साथ   
भी बदले की भावना नहीं रखनी चाहिए।**

दर्पण में प्रतिबिम्बित होने वाली आग या बर्फ से दर्पण गर्म या ठंडा   
नहीं हो जाता। **आत्मा के ज्ञान में जानने में आने वाले ज्ञेय आत्मा को   
प्रभावित नहीं करते।**

**एक आदमी गाँव के मुखिया के पास जाता है और उससे   
कहता है कि एक महिला उसे लुभा रही है। मुखिया उसकी कुटिया**

**में जाता है और उससे पूछता है कि महिला कहाँ है ? वह उसे अटारी   
में ले जाता है, उसे एक स्टूल पर खड़ा करता है और नदी के उस   
पार महिला को दूरबीन से दिखाता है। मुखिया उसे कहता है कि यह   
उसकी स्वयं की कमजोरी है और महिला का कोई दोष नहीं है।**

एयर कंडीशनर हमें उसे चालू करने के लिए मजबूर नहीं करता।   
रेस्तरां हमें अपने भोजन का स्वाद लेने के लिए आमंत्रित नहीं करता। इत्र   
हमें उसे छिड़कने के लिए नहीं कहता। कोई फिल्म हमें देखने के लिए   
आमंत्रण नहीं देती। संगीतकार हमें यह नहीं कहता कि आओ और मुझे   
सुनो। **पाँच इन्द्रिय को भोगने का भाव होने पर भी आत्मा पाँच   
इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय में मिलता नहीं है।**

शेर, लोमड़ी और गधा दोस्त थे। वे एक साथ शिकार करने गए और   
कई जानवरों को मार डाला। उन्होंने सभी मृतक पशुओं को एक स्थान पर   
इकट्ठा किया। शेर ने बुद्धिमान लोमड़ी से कहा कि वह मांस का बँटवारा   
कर दे। लोमड़ी ने तीन भाग में समान रूप से बँटवारा कर दिया। शेर को   
लगा कि उसे सबसे बड़ा हिस्सा मिलना चाहिए था, क्योंकि उसने सबसे   
अधिक मेहनत की है। उसने लोमड़ी को मार डाला और उसे भी मांस के   
ढेर में डाल दिया। अब वह गधे से पूछता है कि वह मांस का बँटवारा   
करे दे। गधा शेर से कहता है कि बस यह सब आपका ही है। जब शेर ने   
गधे से पूछा कि उसे यह सीख कहाँ से मिली ? गधा जवाब देता है कि   
इस मरी हुई लोमड़ी से। **यह जानते हुए कि भौतिक वस्तुएँ कभी स्थायी   
आनन्द नहीं देतीं, इसके बावजूद भी अज्ञानी मनुष्य अपने अनुभव   
से नहीं सीखते।**

हम पारे की बोतल पर ‘जहर’ का लेबल लगाते हैं। **प्रत्येक व्यक्ति   
को सदैव जागृत रहना चाहिए और स्वयं को मलिन भावों से बचाना   
चाहिए, क्योंकि वे भाव जहर की तरह हैं।**

⁕ **गाथा ३८३−३८४−३८५−३८६** ⁕

**कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।**

**तत्तो नियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं॥ ३८३॥**

**कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं।**

**तत्तो नियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवदि चेदा॥ ३८४॥**

**जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं।**

**तं दोसं जो चेददि सो खलु आलोयणं चेदा॥ ३८५॥**

**गिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदिं णिच्चं पडिक्कमदि जो य।**

**गिच्चं आलोचेयदि सो हु चरितं हवदि चेदा॥ ३८६॥**

***जो पूर्वकाल में किये गये अनेक प्रकार के ज्ञानावरणादि   
शुभाशुभकर्मों से स्वयं के आत्मा को दूर रखता है, वह आत्मा   
प्रतिक्रमण है।***

**जिस भाव से भविष्यकालीन शुभाशुभकर्म बँधता है, उस भाव   
से निवृत्त होनेवाला आत्मा प्रत्याख्यान है।**

**वर्तमानकालीन उदयागत अनेक प्रकार के विस्तारवाले   
शुभाशुभकर्मों के दोष को चेतने वाला−छोड़नेवाला आत्मा आलोचना है।**

**जो सदा प्रत्याख्यान करता है, सदा प्रतिक्रमण करता है और   
सदा आलोचना करता है; वह आत्मा वस्तुतः चारित्र है।**

एक व्यक्ति पश्चाताप करने हेतु रात में चर्च जाता है और भगवान   
के सामने बार−बार यह कबूल करता है कि वह चोर है। दूसरा व्यक्ति   
उसे सुनता है और चर्च के बाहर उसका पीछा करता है। वह चिल्लाता है,   
‘चोर, चोर।’ चोर कहता है, कि “मैं चोर नहीं हूँ और मैं तुम्हारे खिलाफ

कानूनी कार्यवाही करूँगा। ‘मैं चोर हूँ’, यह मैं सिर्फ भगवान को कह रहा   
था, तुम्हें नहीं।” **यदि आत्मा को अपराध का एहसास होता हो, तब   
ही प्रतिक्रमण होता है। प्रतिक्रमण करने के बाद कोई कुछ भी कहे,   
कोई फर्क नहीं पड़ता। स्वरूप में लीन न होने के कारण ही भूतकाल   
में अपराध हुए हैं। निजात्मा में स्थिर होना ही प्रतिक्रमण है।**

एक आदमी अमेरिका जाने के लिए व्याकुल है और जाने की पूरी   
तैयारी करता है। हवाईअड्डे के रास्ते में उसे खबर मिलती है कि एक करीबी   
रिश्तेदार की मृत्यु हो गई है और उसे उसकी यात्रा रद्द करनी है। वह बहुत   
गुस्से में है। परन्तु उसे एहसास नहीं होता है कि उसकी स्वयं की भी तो   
मृत्यु हो सकती थी। **भविष्य की सभी इच्छाएँ ज़रूरी नहीं है कि पूर्ण   
हों, फिर भी आत्मा कर्म बाँधता है। इसलिए, ज्ञानी निजात्मा में लीन   
होकर भविष्य की सभी इच्छाओं को त्याग देते हैं।**

एक राजा को सिखाया गया था, ‘यह घड़ी भी बीत जाएगी।’ एक   
और राजा उसके खिलाफ युद्ध में जीत जाता है और उसे मारने के लिए   
पीछा करता है। उसे सिखाया गया बोध याद आता है। वह किसी दूसरे   
रास्ते को ढूंढकर, वहाँ से बचकर निकल जाता है। जब वह राजा अपने   
सिंहासन पर वापस आता है, तब उसे याद नहीं आता, कि ‘यह घड़ी भी   
बीत जाएगी।’ **ज्ञानी यह जानते एवं मानते हैं कि प्रत्येक समय क्षणिक   
है और बीत जाएगा। इसलिए वे भूतकाल के कर्म के उदय से प्राप्त   
संयोगों में से अपनापन छोड़ देते हैं एवं निजात्मा में स्थिर हो जाते हैं।**

**त्रिकाली ध्रुव निजात्मा के ध्यान से ज्ञानी भूत, वर्तमान और   
भविष्य सम्बन्धी अपराधों का प्रतिक्रमण करते हैं।**

⁕ **गाथा ३८७−३८८−३८९** ⁕

**वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणदि जो दु कम्मफलं।**

**सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं॥ ३८७॥**

**वेदंतो कम्मफलं मए कदं मुगदि जो दु कम्मफलं।**

**सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं॥ ३८८॥**

**वेदंतो कम्मफलं सुहिंदो दुहिंदो य हवदिं जो चेदा।**

**सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं॥ ३८९॥**

***जो आत्मा कर्म के फल का वेदन करता हुआ कर्म के फल को   
निजरूप करता है अर्थात् उसमें एकत्वबुद्धि करता है; वह आत्मा   
दुःख के बीजरूप आठ प्रकार के कर्मों को पुनः बाँधता है।***

**जो आत्मा कर्म के फल का वेदन करता हुआ ऐसा जानता−  
मानता है कि मैंने कर्मफल किया; वह आत्मा दुःख के बीजरूप   
आठ प्रकार के कर्मों को पुनः बाँधता है।**

**कर्म के फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा सुखी−दुःखी   
होता है; वह आत्मा दुःख के बीजरूप आठ प्रकार के कर्मों   
को बाँधता है।**

पाप करने वाले व्यक्ति को अनुकूल संयोग मिलते हैं, जबकि समस्त   
पापों से मुक्त मुनिराज को एक वर्ष के लिए आहार नहीं मिलता और   
उन्हें भी प्रतिकूल संयोग मिलते हैं। **सभी संयोग पूर्वकर्म के उदय का   
परिणाम हैं। उस पर आत्मा का कोई अधिकार नहीं है।**

भारत के गाँव का एक जोड़ा हनीमून पर तीन दिन के लिए सिंगापुर   
गया था। उनके पास 500 डॉलर थे। जब वे सिंगापुर हवाई अड्डे पर उतरे,   
तो पत्नी ने कागज का एक टुकड़ा फर्श पर फेंका। उस पर 500 डॉलर का   
जुर्माना लगाया गया। जब अधिकारी ने उसे इसकी रसीद दी, तो वह गुस्से   
से भर गई और रसीद को भी फर्श पर फेंक दिया। उस पर फिर से 500 डॉलर   
का जुर्माना लगाया गया। चूँकि उनके पास कोई पैसा नहीं था, इसलिए उन्हें   
सरकार की ओर से खाना−पीना−ठहरना सहित 6 महीने तक झाड़ू लगाने   
की सजा सुनाई गई। **यह सब उनके कर्म के उदय का परिणाम था।**

महान गामा पहलवान अपने हाथों से एक तेज रफ़्तार से चलती गाड़ी   
को रोकने में समर्थ था। उसे अपनी उपलब्धियों पर बहुत गर्व होता था।   
जब वह बुढ़ापे में बीमार हुआ, तब अपने चेहरे से मक्खी को भी नहीं उड़ा   
पाता था। **हमें अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि सभी संयोग कर्म   
के उदय का परिणाम हैं।**

बच्चा अपनी मुट्ठियों को बंद रखकर पैदा होता है और वहाँ उसके   
पास आत्मज्ञान प्राप्त करने का अवसर होता है। वह मरता है, तब उसके   
हाथ खाली होते हैं, क्योंकि उसने अवसर खो दिया। **जीव को अमूल्य   
मानव जीवन के एक−एक समय का सदुपयोग करना चाहिए।**

⁕ **गाथा ३९० से ४०४** ⁕

**सत्थं गाणं ण हवदि जम्हा सत्थं न याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं सत्थं जिणा बेंति॥ ३९०॥**

**सद्दो गाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं सद्दं जिणा बेंति॥ ३९१॥**

**रूवं गाणं ण हवदि जम्हा रूवं ण याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं रूवं जिणा बेंति॥ ३९२॥**

**वण्णो गाणं ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं वण्णं जिणा बेंति॥ ३९३॥**

**गंधो गाणं ण हवदि जम्हा गंधो न याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अग्नं गंधं जिणा बेंति॥ ३९४॥**

**ण रसो दु हवदि गाणं जम्हा दुरसो गयाणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं रसं च अण्णं जिणा बेंति॥ ३९५॥**

**फासो ण हवदि गाणं जम्हा फासो य याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं फासं जिणा बेंति॥ ३९६॥**

**कम्मं गाणं ण हवदि जम्हा कम्मं न याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं कम्मं जिणा बेंति॥ ३९७॥**

**धम्मो गाणं ण हवदि जम्हा धम्मो न याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं धम्मं जिणा बेंति॥ ३९८॥**

**गाणमधम्मो न हवदि जम्हाधम्मो न याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णमधम्मं जिणा बेंति॥ ३९९॥**

**कालो गाणं ण हवदि जम्हा कालो न याणदे किंचि।**

**तम्हा अण्णं गाणं अण्णं कालं जिणा बेंति॥ ४००॥**

**आयासं पिण गाणं जम्हायासं न याणदे किंचि।**

**तम्हायासं अण्णं अण्णं गाणं जिणा बेंति॥ ४०१॥**

**णज्झवसाणं गाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा।**

**तम्हा अण्णं गाणं अज्झवसानं तहा अण्णं॥ ४०२॥**

**जम्हा जाणदि णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणगो गाणी।**

**गाणं च जाणयादो अव्वदिरितं मुणेयव्वं॥ ४०३॥**

**गाणं सम्मादिट्ठि दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं।**

**धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा॥ ४०४॥**

***शास्त्र ज्ञान नहीं है; क्योंकि शास्त्र कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और शास्त्र अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।***

**शब्द ज्ञान नहीं है; क्योंकि शब्द कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और शब्द अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**रूप ज्ञान नहीं है; क्योंकि रूप कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और रूप अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**वर्ण ज्ञान नहीं है; क्योंकि वर्ण कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और वर्ण अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**गंध ज्ञान नहीं है; क्योंकि गंध कुछ जानती नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और गंध अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**रस ज्ञान नहीं है; क्योंकि रस कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और रस अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**स्पर्श ज्ञान नहीं है; क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और स्पर्श अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**कर्म ज्ञान नहीं है; क्योंकि कर्म कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और कर्म अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**धर्म ज्ञान नहीं है; क्योंकि धर्म कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और धर्म अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**अधर्म ज्ञान नहीं है; क्योंकि अधर्म कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और अधर्म अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**काल ज्ञान नहीं है; क्योंकि काल कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और काल अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**आकाश ज्ञान नहीं है; क्योंकि आकाश कुछ जानता नहीं है; इसलिए   
ज्ञान अन्य है और आकाश अन्य है − ऐसा जिनदेव कहते हैं।**

**अध्यवसान ज्ञान नहीं है; क्योंकि अध्यवसान अचेतन है;   
इसलिए ज्ञान अन्य है और अध्यवसान अन्य है − ऐसा जिनदेव   
कहते हैं।**

**चूँकि जीव निरन्तर जानता है; इसलिए यह ज्ञायक जीव ज्ञानी   
है, ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान ज्ञायक से अव्यतिरिक्त है, अभिन्न है −   
ऐसा जानना चाहिए।**

**बुधजन (ज्ञानीजन) ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टी, संयम, अंगपूर्वगत   
सूत्र, धर्म−अधर्म (पुण्य−पाप) और दीक्षा मानते हैं।**

विद्युत प्रवाह की किताब में विद्युत प्रवाह नहीं होता। जीवित तार में   
ही विद्युत प्रवाह होता है। **शास्त्र में ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो केवल आत्मा   
का मूल स्वभाव है।**

एक दीपक एक अँधेरे कमरे को रोशन करता है। जब वह दूसरे कमरे   
में जाता है, तो पहले कमरे में अँधेरा छा जाता है, दूसरे कमरे में रोशनी   
छा जाती है। **आत्मा दीपक के समान है, ज्ञान प्रकाश के समान है   
और शरीर अँधेरे कमरे के समान है। वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा   
का मूल स्वभाव है।**

कुत्ता हड्डी को चबाता है और उसका जबड़ा कटकर उसमें से खून   
बहता है। तो कुत्ता सोचता है कि खून की वजह से हड्डी स्वादिष्ट है, जो   
असल में उसका अपना खून है। **अज्ञानी मानता है कि शरीर में ज्ञान है।   
वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

एक कंप्यूटर हमारे खिलाफ एक गेम जीतता है। हालाँकि, इसमें खेल   
जीतने की खुशी का कोई ज्ञान नहीं। **वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा   
का मूल स्वभाव है।**

एक बच्चा कुर्सी से टकराता है और खुद को चोट पहुँचाता है। वह   
कुर्सी को मारता है, लेकिन कुर्सी को उसे चोट पहुँचाने का कोई ज्ञान नहीं   
है। **वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

गृहिणी आग को छूने से जल जाती है। उसकी लाश का जब अंतिम   
संस्कार किया जाता है, तो उसे कोई एहसास नहीं होता है, क्योंकि आत्मा शरीर   
में से चला जाता है। **वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

एक रसोइया सब्जियाँ काट रहा है और उसकी उंगली कट जाती   
है। वह दर्द महसूस करता है। पोस्टमॉर्टम के समय मुर्दे को दर्द नहीं होता,   
क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं है। **वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल   
स्वभाव है।**

भूकंप के दौरान लोग जानते हैं कि वे दौड़ सकते हैं और अपने आप   
को बचा लेते हैं, लेकिन इमारतें कहीं नहीं जा सकतीं। **वास्तव में ज्ञान   
तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

एक मैनेजर काम पर देरी से आता है और ट्रैफिक सिग्नल को दोष   
देता है। सिग्नल को कोई ज्ञान नहीं है और वह सिर्फ अपना काम कर रहा   
है। **वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

एक खेत में बिजूका पक्षियों और जानवरों को डराता है। हालाँकि,   
बिजूका को इसका ज्ञान नहीं है। **वास्तव में ज्ञान तो केवल आत्मा का   
मूल स्वभाव है।**

एक कुत्ता रोटी चुराकर भागता है और छिप जाता है। वह यह देखकर   
खाता है कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है न। अगले दिन उसी   
जगह जाता है और मालिक उसे रोटी देता है। अब वह जानता है कि   
वह सुरक्षित है और रोटी वहीं खाता है। कुत्ता चोरी करना और किसी के   
द्वारा मिलना, इनके बीच का अंतर जानता है। **वास्तव में ज्ञान तो केवल   
आत्मा का मूल स्वभाव है।**

दो पड़ोसी बच्चे लड़ रहे थे और माँ ने उनमें से अपने एक बच्चे को   
घर वापस बुला लिया। बच्चा कहता है, “माँ ! तुम मुझे ही क्यों कह रही   
हो और दूसरे को नहीं?” वह उससे कहती है कि “मैं केवल तुम्हें इसलिए   
कह रही हूँ क्योंकि तुम समझदार हो, इसलिए तुम समझोगे। ” ज्ञानी केवल   
चेतन आत्मा को उपदेश देते हैं और अचेतन शरीर को नहीं। **वास्तव में   
ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

एक दर्पण ऊपर और नीचे जाती समुद्री लहरों को प्रतिबिम्बित करता   
है, लेकिन वह अपने आप में स्थिर रहता है। **आत्मा अशुद्ध भावों के**

**कारण अपने ज्ञान के स्वरूप को नहीं छोड़ता। यद्यपि वह सारे जगत   
को नहीं जानता, फिर भी अपने मलिन भावों को जानता है। वास्तव   
में ज्ञान तो केवल आत्मा का मूल स्वभाव है।**

हीरा वही रहता है चाहे पैकेट में हो, किसी व्यक्ति की अंगूठी में   
हो या धूल में। उसका चमकदार स्वभाव ऐसा ही बना रहता है। **आत्मा   
किसी भी शरीर में या किसी भी अवस्था में अपने ज्ञान स्वभाव को   
छोड़ता नहीं है।**

जैसे कोई व्यक्ति लोगों की भीड़ में हीरा मिलने के बाद अपने घर   
जाकर हीरे का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता है और उसका आनन्द लेता   
है। **आत्मार्थी साधक आत्मा पर प्रवचन सुनता है और घर आकर   
शांति से उसका ध्यान करता है। परम आनन्द को उपलब्ध होता है।**

⁕ **गाथा ४०५−४०६−४०७** ⁕

**अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एवं।**

**आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पोग्गलमओ दु॥ ४०५॥**

**ण वि सक्कदि घेत्तुं जं न विमोत्तुं जं च जं परद्दव्वं।**

**सो को वि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि॥ ४०६॥**

**तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो गेव गेव्हदे किंचि।**

**नेव विमुंचदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं॥ ४०७॥**

***इसप्रकार जिसका आत्मा अमूर्तिक है, वह वस्तुतः आहारक   
नहीं है; क्योंकि आहार पुद्‌गलमय होने से मूर्तिक है। परद्रव्य को न   
तो छोड़ा जा सकता है और न ही ग्रहण किया जा सकता है; क्योंकि   
आत्मा के कोई ऐसे ही प्रायोगिक और वैस्रसिक गुण हैं। इसलिए   
विशुद्धात्मा जीव और अजीव परद्रव्यों से कुछ भी ग्रहण नहीं करते   
और न छोड़ते ही हैं।***

एक व्यक्ति अपने दोस्त से पूछता है, “आपकी गाय ने मांस खाना   
कब बंद कर दिया?” मित्र ने उत्तर दिया, “मेरी गाय ने कभी मांस खाना   
शुरू ही नहीं किया, तो वह मांस खाना बंद कैसे करेगी ?” **ऐसे ही आत्मा   
ने कभी आहार को ग्रहण ही नहीं किया, तो वह आहार का त्याग   
कैसे कर सकता है ?**

दो दोस्त थे। एक दोस्त ने कहा कि वह ताजमहल बेचना नहीं चाहता   
है। दूसरे दोस्त ने कहा कि वह ताजमहल खरीदना नहीं चाहता है। वास्तव   
में वे दोनों न तो ताजमहल खरीद सकते हैं और न ही बेच सकते हैं।   
**आत्मा परद्रव्य को ग्रहण या त्याग नहीं कर सकता।**

एक दोस्त दूसरे दोस्त से पूछता है कि क्या वह उसके घर पर हमेशा   
के लिए रह सकता है। दूसरा दोस्त बोला, “ नहीं।" तब पहले दोस्त ने फिर   
पूछा कि क्या वह अपने घर आकर रुकना चाहता है। दूसरा दोस्त बोला,   
“मेरे पास अपने लिए काफी जगह है, परन्तु आपको देने के लिए अधिक   
नहीं है।” **प्रत्येक आत्मा में अपने अनन्त गुण होते हैं, लेकिन दूसरों   
को देने के लिए कुछ भी अधिक नहीं है।**

जब दर्पण अपने में प्रतिबिम्बित वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता, तो   
वस्तु का त्याग कैसे कर सकता है ? **जब आत्मा अपने ज्ञान में जानने में   
आने वाले पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकता, तो पदार्थों का त्याग   
कैसे कर सकता है ?**

⁕ **गाथा ४०८−४०९** ⁕

**पासंडीलिंगाणि व गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि।**

**घेत्तुं वदंति मूढा लिंगमिनं मोक्खमग्गो ति॥ ४०८॥**

**ण दु होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा।**

**लिंगं मुझत्तु दंसणणाणचरिताणि सेवंति॥ ४०९॥**

***बहुत प्रकार के पाखण्डी (मुनि) लिंगों अथवा गृहस्थ लिंगों   
को धारण करके मूढ़जन यह कहते हैं कि यह लिंग मोक्षमार्ग है। परन्तु   
लिंग मोक्षमार्ग नहीं है; क्योंकि अरिहंतदेव लिंग को छोड़कर अर्थात्   
लिंग पर से दृष्टि हटाकर दर्शन − ज्ञान − चारित्र का सेवन करते हैं।***

एक नेता चुनाव हार जाता है और उसके पास कोई नौकरी नहीं होती   
है। उसे एक सर्कस में नौकरी मिलती है। उसे सिंह का रूप धारण करना   
था। जब वह रिंग में जाता है, तो वह एक और शेर का सामना करता है   
और डरकर भागने लगता है। दूसरा शेर उसके सामने चिल्लाता है कि वह   
भी एक नेता है जो चुनाव हार गया है। कोई सिर्फ बाहर में रूप बदलकर   
शेर नहीं बन सकता। **बाह्य दिखावे से या मुनि की बाह्य क्रिया से कोई   
सच्चा साधु नहीं बन जाता।**

जैसे कोई भी व्यक्ति गर्दन पर स्टेथोस्कोप लगाने मात्र से डॉक्टर नहीं   
बन जाता। उसे डॉक्टर बनने के लिए अध्ययन करना जरूरी है। **ऐसे ही   
बाह्य व्रतों का पालन करने मात्र से कोई साधु नहीं बन जाता। उसे   
आत्मानुभूति प्रकट करके मोह, राग एवं द्वेष रूपी भावों का त्याग   
करना चाहिए।**

⁕ **गाथा ४१०** ⁕

**ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडीगिहिमयाणि लिंगाणि।**

**दंसणणाणचरिताणि मोक्खमग्गं जिणा बेंति॥ ४१०॥**

***मुनियों और गृहस्थों के लिंग (चिन्ह) मोक्षमार्ग नहीं; क्योंकि   
जिनदेव तो दर्शन−ज्ञान−चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं।***

सिर्फ मोर पंख रखने का मतलब यह नहीं है कि तुम धार्मिक हो।   
वरना सभी मोर धार्मिक कहलाएँगे। सिर्फ परिग्रह का त्याग करने मात्र से   
कोई धार्मिक नहीं हो जाता। वरना सभी पशु धार्मिक कहलाएँगे। सिर्फ एक   
स्थान पर बैठे रहने और न बोलने से कोई धार्मिक नहीं हो जाता। वरना

सभी वृक्ष धार्मिक कहलाएँगे। सिर्फ सफेद कपड़े पहनने से कोई धार्मिक   
नहीं हो जाता। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के लिए सफेद वस्त्र खरीदने के   
लिए जाना बहुत आसान है। **अरिहंत भगवान ने समस्त मोह, राग एवं   
द्वेष का त्याग दिया है एवं किसी भी व्रत का पालन न करने पर भी   
वे परम धार्मिक हैं।**

⁕ **गाथा ४११** ⁕

**तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिदे।**

**दंसणणाणचरिते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे॥ ४११॥**

***इसलिए गृहस्थों और मुनियों द्वारा ग्रहण किये गये लिंगों को   
छोड़कर उनमें से एकत्वबुद्धि तोड़कर मोक्षमार्गरूप दर्शन−ज्ञान−  
चारित्र में स्वयं को लगाओ।***

जैसे स्त्री के वस्त्र पहनने से पुरुष स्त्री नहीं हो जाता। **ऐसे ही बाह्य   
व्रतादि का पालन करके अज्ञानी साधु नहीं हो जाता।**

एक बेटा अपनी माँ से बेहद प्यार करता है, लेकिन माँ के मर जाने   
के बाद वह उसका अंतिम संस्कार कर देता है। **आत्मानुभूति के बिना   
बाह्य व्रत अकार्यकारी हैं।**

⁕ **गाथा ४१२** ⁕

**मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय।**

**तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वसु॥ ४१२॥**

***हे भव्य ! तू अपने आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थापित कर। तदर्थ   
अपने आत्मा का ही ध्यान कर, आत्मा में ही चेत, आत्मा का ही   
अनुभव कर और निज आत्मा में ही सदा विहार कर; परद्रव्यों में   
विहार मत कर।***

जैसे बिना वीज़ा के कोई दूसरे देशों की यात्रा नहीं कर सकता है।   
**परन्तु एक अपने घर में प्रवेश करने हेतु अनुमति की आवश्यकता   
नहीं है। अंतर की यात्रा प्रारम्भ करने हेतु किसी भी पराये की अनुमति   
की आवश्यकता नहीं है। अतः प्रत्येक जीव को निजात्मा का ध्यान   
करना चाहिए।**

⁕ **गाथा ४१३** ⁕

**पासंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।**

**कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं॥ ४१३॥**

***जो व्यक्ति बहुत प्रकार के मुनिलिंगों या गृहस्थलिंगों में ममत्व   
करते हैं अर्थात् यह मानते हैं कि ये द्रव्यलिंग ही मोक्ष के कारण हैं;   
उन्होंने समयसार को नहीं जाना।***

किसी व्यक्ति के पास 100 और 500 वाट के बल्ब हैं, लेकिन   
उसके पास बिजली नहीं है। इसलिए वे किसी काम के नहीं हैं। **गृहस्थ एवं   
मुनि का बाह्य आचरण जीव को आत्मानुभूति की प्राप्ति हेतु   
कार्यकारी नहीं है।**

⁕ **गाथा ४१४** ⁕

**ववहारिओ पुणं गओ दोणि वि लिंगाणि भगदि मोक्खपहे।**

**निच्छयणओ ण इच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि॥ ४१४॥**

***व्यवहारनय मुनिलिंग और गृहीलिंग − दोनों को ही मोक्षमार्ग   
कहता है; परन्तु निश्चयनय किसी भी लिंग को मोक्षमार्ग नहीं मानता।***

एक छात्र के पास परीक्षा देने हेतु अपना पेंसिल बॉक्स तैयार है।   
परन्तु उसने पढ़ाई नहीं की है। एक और छात्र है, जिसने एक साल तक

पढ़ाई की लेकिन अपना पेंसिल बॉक्स साथ लेकर नहीं गया। **व्यवहारनय   
से मुक्ति की प्राप्ति हेतु बाह्य व्रत आवश्यक है। निश्चयनय से आत्म   
ज्ञान मुक्ति का मार्ग है। जहाँ निश्चय होता है, वहीं व्यवहार होता है।**

⁕ **गाथा ४१५** ⁕

**जो समयपाहुडमिगं पढिदूगं अत्थतच्चदो गातुं।**

**अत्थे ठाही चेदा सो होही उत्तमं सोक्खं॥ ४१५॥**

***जो आत्मा इस समयप्राभृत को पढ़कर, अर्थ और तत्त्व से   
जानकर इसके विषयभूत अर्थ में स्वयं को स्थापित करेगा; वह उत्तम   
सुख (अतीन्द्रिय आनन्द) को प्राप्त करेगा।***

भूखा व्यक्ति पाकशास्त्र की किताब पढ़कर रेसिपी समझता है, फिर   
खाना बनाता है और उसे खाता है। तो उसकी भूख शांत हो जाती है।   
**ऐसे ही जो जीव इस शास्त्र को एवं उदाहरण सहित रची गयी इसकी   
टीका को पढ़कर समयसार को ग्रहण करेगा, वह परम आनन्द को   
प्राप्त होगा।**

**नोट**

⁕ **फूलचंद की सर्वाधिक लोकप्रिय रचनायें** ⁕

**www.fulchandshastri.com**

1. **142 ज्ञान दीपक! बोधामृत (गुजराती, हिन्दी, अंग्रेज़ी)**
2. **आत्मसिद्धि शास्त्र संक्षिप्त टीका (158 देशों में उपलब्ध)**
3. **राख की दीवार का पड़ोसी (हिन्दी, अंग्रेज़ी)**
4. **ज्ञान से ज्ञायक तक (हिन्दी, गुजराती)**
5. **आत्मसिद्धि अनुशीलन (गुजराती, अंग्रेज़ी)**
6. **महावीर का वारिस कौन ? (गुजराती, हिन्दी )**
7. **क्षणिक का बोध और नित्य का अनुभव (गुजराती, हिन्दी, अंग्रेज़ी)**
8. **मंगल सूत्र − चैतन्य स्वभाव (हिन्दी)**
9. **जैनधर्म रहस्य (हिन्दी)**
10. **पुण्यविराम (गुजराती, अंग्रेज़ी)**
11. **क्रमबद्ध पुरुषार्थ (हिन्दी, गुजराती)**
12. **मुझे मत मारो (इंडोनेशियन)**
13. **आतंकवाद में अनेकांतवाद (हिन्दी, अंग्रेज़ी, गुजराती)**
14. **स्वरूप ही ऐसा है (गुजराती, हिन्दी )**
15. **मरण का हरण (हिन्दी)**
16. **अंक अंकित अध्यात्म (हिन्दी)**
17. **आध्यात्मिक शब्दकोष (हिन्दी)**
18. **ध्यान से पूर्व तत्त्वविचार (हिन्दी, गुजराती, अंग्रेज़ी)**
19. **श्रद्धा (हिन्दी)**
20. **ज्ञान दर्पण सहस्त्री (हिन्दी)**
21. **छहढाला – षट्पद विवेचन (हिन्दी)**
22. **स्वतंत्र स्वरूप सम्पूर्ण शतक (हिन्दी)**
23. **वैराग्य जननी − बारह भावना (हिन्दी)**
24. **वर्धमान से महावीर (हिन्दी)**

**हे ज्ञान दीपक !**

**अब तो देह में रक्तवहन भी हो   
तो चैतन्य के लिए,**

**साँसें भी चलें   
तो चैतन्य के लिए,**

**पसीना भी छूटे   
तो चैतन्य के लिए,**

**आँसू भी बहें   
तो चैतन्य के लिए,**

**जीना भी चैतन्य के लिए और   
मरना भी चैतन्य के लिए,**

**आज चैतन्य और अनन्त काल तक   
चैतन्य चैतन्य चैतन्य…**